बालक के लालन-पालन की कला

लेखक

रतिभानु सिंह नाहर

— ० —

किताब महल, इलाहाबाद : बम्बई

प्रथम संस्करण, १९५५

मुद्रक महावीर प्रसाद, प्रम प्रेस, कटरा, प्रयाग।
प्रकाशक किताब महल, ५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद।

विषय-सूची

		पृष्ठ
१	बालक और माता पिता	१
२	मातृत्व या पितृत्व की तैयारी	९
३	घर और वातावरण	१५
४	एक साल का बच्चा	२३
५	बच्चे का दूसरा साल	३२
६	दो से पाँच वर्ष	४४
७	घर में द्वितीय सन्तानोत्पत्ति	५७
८.	पुरस्कार और दण्ड	६८
९	कुछ अवाञ्छित आदतें	७४
१०	कुछ सामान्य समस्याएँ	७८
११	भोजन और भोजन करने की कठिनाइयाँ	८४
१२	खिलौने तथा खेल	९३
१३	पुस्तकें	१०३
१४	शिक्षा रम्भ	१०९
१५	स्कूल में बच्चा	११६
१६	प्रगति	११९
१७	किशोरावस्था का प्रथम सोपान	१२७
१८	किशोरावस्था का द्वितीय सोपान	१३३

दो शब्द

बालक का विकास किस प्रकार होता है इससे सभी परिचित हैं। हम सब भी तो बालक रह चुके हैं, फिर परिचित क्यों न हों। माता पिता के रूप में भी हम बालक के विकास को देखते हैं पर दुःख है कि बन्द आँखों से ही देखते हैं। हममें से अधिकांश बच्चों के उत्थान को बन्द आँखों से ही देखते हैं। अपना बचपन तो हम बिल्कुल भूल जाते हैं। यदि अपना बचपन याद रक्खें तो फिर बालक के विकास को समझना बिल्कुल सरल हो जाय और हम बिल्कुल सरल रीति से उस उत्थान को समझ कर उसमें उचित सहायता दे सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में बालकों के विकास-सम्बन्धी विभिन्न सोपानों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। तत्सम्बन्धी समस्याओं का उल्लेख करके उनके निराकरण के भी उपाय प्रस्तुत किये गए हैं। यदि हम बालक की उपेक्षा कर सकते तो बाल-मनोविज्ञान के विषय को भी उपेक्षित दृष्टि से ही देख सकते। पर यह असम्भव है। यहाँ कुछ व्यक्तिगत अनुभवों का सहारा लेकर उन्हें बाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर कसकर बालकों के विकास के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है जिससे माता-पिता एवं अभिभावक बालकों के लालन-पालन की कला को जान सकें।

—लेखक

अध्याय १

बालक और माता-पिता

यह मनोविज्ञान का युग ह। साहित्यकार अपनी रचना में मनोविज्ञान के तथ्यों की ओर देखता है, वक्ता मनोवैज्ञानिक प्रभावो के कारणो पर दृष्टि डालता है तथा प्रत्येक व्यवसायी मनोविज्ञान के सहारे ही सफलता के सोपानो को पूण करने की आशा रखता ह। जब जीवन के अन्य विषयात्मक क्षेत्रो में मनोविज्ञान की दुहाई दी जाती है तो भला शुद्ध मनोविज्ञानपरक विषयो में इसकी उपेक्षा कसे सम्भव ह। इन्ही विषयो में बाल-मनोविनान भी एक महत्वपूण विषय है। वतमान युग में इस विषय की ओर लोगो का इतना अधिक ध्यान जा रहा है कि कोई अध्यापक बाल-मनोविनान से अनभिज्ञ रह कर पूण अध्यापक नही समझा जा सकता और न कोई पिता ही (सच्चे अर्थों में) पिता कहा जाने का दावा कर सकता ह। निश्चय ही मनोविज्ञान का यह रोग हमारे देश में पश्चिम से जहाजो पर लाद कर आया है। गुरु द्रोणाचाय ने बाल-मनोविज्ञान की कोई पुस्तक नही पढी होगी फिर भी उन्होने अपने शिष्यो के शारीरिक एव मानसिक विकास में जो सफलता प्राप्त की वह इतिहास-प्रसिद्ध ह। चाणक्य ने कौन सा मनोविज्ञान-शास्त्र देखा था जो उसने नालन्दा विश्वविद्यालय से ऐसे-ऐसे रत्न उत्पन्न किये जिन्होने भारतीय इतिहास को गौरव प्रदान किया। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हे। किन्तु बस । जरा रुकिये और सोचिये। मनोविज्ञान की आवश्यकता कब पडती ह? अर्थात् किस हित के साधन के लिए हम मनोविज्ञान का पल्ला पकडते ह? इन प्रश्नो का केवल एक उत्तर हो सकता ह। मनुष्य के आन्तरिक रहस्यों को जानकर उनसे लाभ उठाना। लाभ उठाने की बात इसलिए कही गई है कि ज्ञान की यह सबसे बडी विशेषता ह। वह ज्ञान ही क्या जिससे हमें लाभ न पहुँचे।

यह लाभ कई प्रकार से हो सकता है जिसके सम्बन्ध में पाठक स्वयं सोच सकते हैं। इस प्रकार बालक के मन की विभिन्न दशाओं एवं उसके स्रोतों का ज्ञान बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा प्राप्त करके बालकों से सम्बन्धित जन उनका उचित पथ प्रदर्शन करते हैं और इस कार्य में सफलता प्रदान करने के लिए वे अपनी क्रियाओं में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हैं। वर्तमान युग में जीवन की कृत्रिमताओं ने मनोविकारों को अपने में इतना ढाल लिया है, उनको इतना अधिक प्रभावित किया है कि वे स्वाभाविक होकर भी अस्वाभाविक लगते हैं। उदाहरणार्थ क्रोध मन का स्वाभाविक विकार है। मनुष्य [illegible] परशुराम को भी उसी प्रकार क्रोध आया था जैसे आज कल अपनी पुस्तक फाड़ने वाले किसी शरारती लड़के पर आता है। इसी प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम राम को भी समुद्र पर उसी प्रकार क्रोध आया था जिस प्रकार अपने किसी भृत्य की अवज्ञा पर आज हमें क्रोध आता है। फिर मनोविकारों में अस्वाभाविकता किस प्रकार आई है? इस पर विशेष प्रकाश डालना विषयान्तर होना होगा। अतः केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जीवन में अस्वाभाविकता (कृत्रिमता) आ जाने के कारण हमें अपने स्वाभाविक मनोविकारों को भी दबाना पड़ता है और उन पर नियंत्रण करनी पड़ती है। किन्तु प्राचीन काल में ऐसी कोई बात न थी। बालकों की देख रेख का भार छः-सात वर्ष की आयु से ही अध्यापकों पर पड़ जाता था और बहुधा बालकों को अध्यापकों के साथ रहना भी पड़ता था। जिस प्रकार के वातावरण में वैसी शिक्षा उन प्राचीन कालीन विद्यार्थियों को दी जाती थी उसके लिए विशेष ही बाल-मनोविज्ञान के ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं थी। गुरु शिष्य को कठोर से कठोर शारीरिक दण्ड दे सकता था और यह बात मनोविज्ञान के विरुद्ध नहीं माना जाता था। ऐसा क्यों? आधुनिक बाल मनोविज्ञान शारीरिक प्रताड़ना को सिद्धान्त-विरुद्ध मानता है। यह इससे अनेक कुण्ठाओं को छिपाये हुए बालकों में उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया पर विशेष ध्यान देता है। शिक्षक या गुरु द्वारा दण्ड पाने पर बालक का कोमल मन ही मन कुछ सोचता और यह भी असम्भव नहीं कि वह अध्यापक का

विरोध करे। किन्तु प्राचीन युग में मान्यताएं ही बिल्कुल भिन्न थी। गुरु चाहे जितना प्रताडित करे शिष्य के मन में गुरु के प्रति किसी प्रकार की प्रक्रिया नही उत्पन्न हो सकती थी। ऐसा करना 'पाप' था। भला कोई विद्यार्थी 'पाप' से नही डरता? पाप-पुण्य की इसी प्रबल भावना ने उनके मनोविकारो को दबा दिया था। वे विकसित होते थे पर दूसरे रूप में। क्रोध होता था, पर दुर्जनों पर, ईर्ष्या होती थी पर धर्म में आगे बढ़ने के निमित्त, लोभ होता था पर पुण्य कृत्यों के प्रति। सारांश यह कि सारी परिस्थितियाँ ही भिन्न थी। माता पिता द्वारा पालन-पोषण में भी किसी प्रकार की कमी नही पडती थी। पर वे बाल-मनोविज्ञान के ग्रन्थो के पडित न थे। हाँ आता था उन्हें एक महामन्त्र प्रेम। बच्चो से प्रेम करना उनका स्वाभाविक गुण था। इसके लिए उनके पास समय भी था। पर आज सारा वातावरण ही परिवर्तित हो गया है। न तो हममें वात्सल्य प्रेम का वह उत्तम रूप ही है और न उन्हें प्रेम करने का हमारे पास समय। ऐसी अवस्था में हमें विवश होकर बाल-मनोविज्ञान का सहारा लेना पडता है। स्वस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में वैद्य और डाक्टरो की उतनी आवश्यकता नहीं पडती जितनी गदे सडे-गले औद्योगिक नगरो में। अत वर्तमान युग में हर माता पिता अपने बच्चों को मनोवैज्ञानिक ढग से रखने के लिए, उसका विकास करने के लिए प्रयत्नशील है। किन्तु यह रोग इतना भयानक रूप धारण करता जा रहा है कि प्रत्येक क्षण अभिभावक या माता-पिता बाल-मनोविज्ञान के सिद्धान्त का मुँह ताका करते हैं। मुझे याद आ रहा है कि किसी कार्टूनिस्ट (व्यग्य चित्रकार) ने एक व्यग्य-चित्र बनाया था जिसमें एक माता अपने दाहिने हाथ में साबुन लिये थी और बायें हाथ में एक पुस्तक थी जिस पर लिखा था बाल-मनोविज्ञान'। सामने बच्चा मुँह बनाये बैठा था। सचमुच स्थिति भी ऐसी ही है। बालक के सुलाने, उठाने, नहलाने खिलाने आदि समस्त क्रियाओं में हम उसके मनोविज्ञान का ध्यान रखते है। हम बाल-मनोविज्ञान के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को पढते है, पर उस समय हमारी स्थिति बड़ी नाजुक हो जाती है जब आचार्यों के सिद्धान्तों में मतवभिन्य हो जाता

है। कोई कहता है इस प्रकार रखो, कोई कहता है नहीं इस प्रकार रखो। ऐसी दशा में बच्चों का पालन-पोषण मनोवैज्ञानिक ढंग से करने वाले माता-पिता इसे क्षुब्ध हो उठे। आखिर कौन सा मार्ग उचित होगा। इस प्रकार ऐसे माता पिता के बच्चों के उचित पालन-पोषण की समस्या हमारे सम्मुख है।

किन्तु हमारे समाज में कुछ ऐसे भी घर हैं जहाँ मनोविज्ञान कोई अर्थ नहीं रखता है। जहाँ यह सोचा जाता है कि माता पिता का अपने बच्चे पर वैसा ही अधिकार है जैसे किसी वृक्ष लगाने वाले का वृक्ष तथा उसके फलों पर। यहाँ बच्चे की इच्छा कोई इच्छा नहीं, उसके भाव भाव नहीं और माता-पिता जिस प्रकार रखते हैं उन्हें उसी प्रकार रहना पड़ता है। यदि बच्चा हँसना चाहता है और वे चाहते हैं कि घर में कोई न हँसे तो बच्चे को भी रोना पड़ेगा। ये दकियानूसी लोग हैं जो प्रताड़ना द्वारा बच्चों को 'सीधा' करना चाहते हैं। ये कठ अनुशासन के हिमायती हैं।

कुछ ऐसे घर भी देखने को मिलेंगे जहाँ बच्चे को आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता रहती है। वे चाहे जो कुछ कर दें जिस क्षति पहुँचा दें, प्यारवश कोई कुछ नहीं कह सकता। और नहीं तो घर वाले हँसकर उसे उसी काम के लिए प्रोत्साहित करेंगे। अधिक लाड़ प्यार में पाले गए बालक कैसे युवक होते हैं यह सभी जानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ तो कठोर अनुशासन के पक्षपाती हैं और कुछ अत्यधिक छूट और लाड़-प्यार के पोषक। अब इन दो प्रकार की विधियों में हम किसका प्रयोग करें यह समस्या है। ऐसी दशा में निराश होकर बाल-मनोवैज्ञानिक की शरण में जाना पड़ता है पर वहाँ भी हमें निराशा ही मिलती है। कारण यह है कि वे कुछ असाधारण बालकों की असाधारण प्रवृत्तियों एवं मनोविकारों का अध्ययन करके हमें उनसे परिचित कराते हैं पर हमें तो अपने साधारण बालक की देख रेख करनी है। और जैसा कि आरम्भ में ही कहा गया है इन मनोवैज्ञानिकों में भी मतभेद है।

यही नहीं कभी-कभी तो एक ही घर में दो विरोधी विचारों

लागू होती ह। पिता चाहता है कि बच्चे पर कठोर अनुशासन रखा जाय और माता चाहती ह बच्चे को उनी की इच्छा पर छोड देना, उसकी गल्तियो पर ध्यान न देना। बच्चे भी बडे चतुर होते ह। वे वास्त विकता को भाँप लेते हैं और माता-पिता की इन दुर्बलताओ से खूब लाभ उठाते ह। पिता के क्रोध से बचने के लिए वे माता की गोद में भाग जाते ह।

कही-कही तो माता पिता को इतना अवकाश नही कि वे अपने बच्चो की पूरी देख रेख कर सकें। हमारे देश में अधिकाश पिताओं को तो सचमुच फुर्सत नहीं मिलती और वे अपने काम में दिन रात लगे रहते ह, माताएँ भी घर के काम-काज में इतना अधिक व्यस्त रहती हैं कि वे बच्चे की ओर उचित ध्यान नही दे पातीं। नई माताओ के लिए तो बच्चा कष्टदायक सिद्ध होता है और कभी-कभी वे उसे अपना अभिशाप तक मान बठती हैं। ऐसे माता पिता विवश होकर बच्चो को पूण स्वतन्त्रता दे देते ह और फल यह होता है कि वे मन माने ढग से काय करते हैं। इसका कुप्रभाव समाज पर पडता ह। बहुत समय बीत जाने पर ऐसे माता-पिता इस बात का अनुभव करते ह कि सभ्य समाज में इस प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। पर वे काफी देर में ऐसा जान पाते हैं और तब कोई उप-चार नहीं रह जाता और बालक का चरित्र हाथ से निकल जाता ह। क्रुद्ध होकर वे बच्चे को दण्ड देत ह। यह दण्ड भी आवश्यकता से अधिक होता ह।

इसे तो सभी स्वीकार करते ह कि पूण स्वतन्त्रता बालक तो क्या प्रौढ तक के लिए हानिप्रद है। यदि समाज में किसी प्रकार का बधन न रह जाय तो लोग मनमानी करने लगें और सामाजिक अशान्ति व्याप्त हो जायेगी। इसी प्रकार देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए ही तो नियमा का प्रबधन बनाया गया है। फिर बालक ही क्यो नियम और बधनहीन हो ? यदि केवल दस वर्ष के भीतर उत्पन्न होने वाले सम्पूण बालको को पूण स्वतन्त्रता दे दी जाय

वास्तविक कुंजी है। बालकों का उचित विकास चाहने वाले समस्त लोगों को इसकी प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये। बच्चों का विश्वास और प्यार पाकर माता पिता उनका उचित निरीक्षण कर सकते हैं। इसके अभाव में केवल प्रताड़ना से काम लेना पड़ता है और प्रताड़ना का प्रभाव अलाभकर सिद्ध होता है। यह तभी तक काम में लाया जाता है जब तक बच्चे हमारे सम्मुख रहते हैं, परोक्ष में वे चाहे जो कुछ करने को स्वतन्त्र हैं।

अवयस्क अपराधियों के सबंध में जाँच करने पर यह ज्ञात हुआ कि वे बहुधा उन घरों के होते हैं जहाँ बच्चों को प्यार से वंचित रक्खा जाता है, जहाँ उनकी सुरक्षा की उचित व्यवस्था नहीं रहती और उनकी आवश्यकताओं की उचित पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। उपेक्षित बालक उपेक्षित कार्य ही कर सकते हैं। अतः हमें सर्व प्रथम यह जान लेना चाहिये कि बच्चों को प्यार किये बिना हम उनको वांछित मार्ग पर अग्रसर नहीं कर सकते। बालकों के सबंध में प्यार से आकर्षण उत्पन्न होता है और आकर्षण उत्पन्न हो जाने पर वे माता-पिता की इच्छाओं का पालन करने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। ऐसी स्थिति आ जाने पर आप चाहे जिस प्रकार उन्हें मोड़ सकते हैं पर इसके विपरीत स्थिति उपस्थित हो जाने पर बच्चे माता-पिता का विरोध करते हैं। उनकी इच्छा के ठीक विपरीत कार्य करने में उन्हें आनन्द आता है। जिस प्रकार माता पिता बच्चे की कोमल भावनाओं को ठेस पहुँचाते हैं उसी प्रकार बच्चा उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाता है। यह स्थिति बड़ी भयावह होती है। अतः पहले इससे बचने का प्रयत्न करना चाहिये।

एक बात और सूचित कर देना अनिवार्य है। बच्चों को यह कदापि न ज्ञात होने पावे कि आप हर समय उनके निरीक्षक के रूप में खड़े हैं। ऐसा जान जाने पर वह अपनी वास्तविकता पर परदा डालेगा। स्वयं को खोल न पायेगा। आपके सम्मुख उसके सारे कार्य कृत्रिम-से होंगे। अतः स्वाभाविक स्थिति का बोध न हो सकने के कारण आप ठीक निश्चय नहीं कर पायेंगे कि बच्चे को किस प्रकार की आवश्यकता

चाहिए है। इसके विरुद्ध बच्चा यह समझे कि मैं अपने कार्यों के लिए स्वतन्त्र हूँ और किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने पर माता-पिता जो रक्षक की भाँति उपस्थित हैं हमारी सहायता करेंगे। यहाँ मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। एक पिता ने अपने पुत्र में इस प्रकार का विश्वास इतना अधिक उत्पन्न कर दिया था कि किसी बालक साथी के प्रभाव में आकर उस सात वर्ष के बालक ने सिगरेट पीने की इच्छा की। उसने चाहा कि पिता की सहायता से सिगरेट जला लूँ और पिऊँ। वह दौड़ा हुआ पिता के पास गया। अपनी इच्छा को प्रकट किया। पिता ने सिगरेट जला दिया। बच्चे को एक कश खींचने को दिया। स्वभावतः उसे जोर की खाँसी आई। गला जलने लगा हृदय में भी जलन उत्पन्न हुई। बच्चे की आँखों से आँसू निकल आये। चक्कर भी आ गया। थोड़ी देर की बेचैनी के बाद ज्योंही वह साधारण स्थिति में आया कि उसने कहा—पिता जी अब मैं ऐसी चीज नहीं छूँगा। बालक ने अपने हाथ से दियासलाई और सिगरेट फेंक दिया। जब इतना विश्वास आप बच्चे पर जमा लेंगे तो फिर कोई शक्ति नहीं जो बच्चे को गलत रास्ते पर ले जा सके।

ऊपर रक्षक की बात कही गयी है। बच्चों के लिए माता-पिता को अपना यह उत्तरदायित्व कभी भी नहीं भूलना चाहिए। बच्चों की शारीरिक बनावट ही कुछ ऐसी है कि उन्हें रक्षक चाहियें। पर यह भी ध्यान रहे कि आप उनके स्वतन्त्र विकास में बाधक न बनें। अगर उनके प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करके उन्हें सुविधा प्रदान करते जायेंगे तो बालक के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुँचेगी। इन्हीं मुख्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर हमें अपना कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिये।

अध्याय २

मातृत्व या पितृत्व की तैयारी

प्रत्येक कार्य-व्यापार के लिए हम पहले से ही तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझते है। बिना प्रारम्भिक ज्ञान के उस व्यवसाय में हाथ लगाना सचमुच अलाभकर माना जाता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रशिक्षण (Training) की आवश्यकता सर्व-मान्य है। एक साधारण घरेलू नौकर रखते समय भी हम पूछ लेते हैं कि उसने अन्यत्र कहीं इस प्रकार का काय किया है अथवा नहीं। किन्तु पिता या माता होने का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के पूर्व हम तत्सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। हमारी उदासीनता ही भविष्य में हमें संकट में डालती है। मातृत्व या पितृत्व की तैयारी के लिए हम कोई उपाय पहले से नहीं करते हैं। किस प्रकार बच्चे को पालना चाहिये, कब उसे दूध पिलाया जाय कैसे नहलाया जाय आदि का कोई ज्ञान माता होने वाली स्त्री को नहीं होता है। वह अपनी सन्तान पर ही ये सारे प्रयोग करती है। यह प्रयोग उचित या अनुचित दोनों रूपों में हो सकता है। बहुधा प्रयोग गलत ही होते हैं। ऐसी माताओं की दशा ठीक उस बालक-सी होती है जो सुन्दर अक्षर बनाने के लिये तख्ती पर बार-बार लिखता और मिटाता है।

लड़कियों को तो बचपन में इस प्रकार का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाता है क्योंकि अपने छोटे भाई-बहनों की सेवा-सुश्रूषा का कुछ भार उनके ऊपर भी होता है पर बालकों को इस प्रकार की कोई जानकारी नहीं होती है और आगे चलकर पिता हो जाने पर वे पितृत्व के कर्तव्यों से बिल्कुल अपरिचित रहते है। वर्तमान युग में लड़कियों को भी पढ़ने लिखने, सिलाई-बुनाई से फुर्सत नहीं मिलती

सबसे बड़ी कठिनाई पड़ती है माता पिता का शिशु के मामले में मतैक्य न होना। इस त्रुटि का उल्लेख प्रारम्भ में ही किया जा चुका है। कहीं-कहीं माता कठोर होते देखी गई है तो पिता सरल और दयालु तो कहीं इसके विपरीत परिस्थिति पाई जाती है। इस स्थिति में बालक बहुत शीघ्र परिचित हो जाता है और जैसा कि बताया जा चुका है वह इससे अनुचित लाभ उठाता है। अत यह आवश्यक है कि माता पिता दोनों मिल कर बालक के सम्बन्ध में विचार करें और एक समुचित नीति का पालन करें। यदि माता पिता ऐसा नहीं करते हैं तो वे जब कभी भी कोई समस्या सामने आयेगी तो एक दूसरे से असहमत होंगे और इस स्थिति का दुरुपयोग बालक निश्चय रूप से करेगा।

बच्चा पैदा होने पर सबसे बड़ा उत्तरदायित्व माता के ऊपर आ जाता है जो अब तक बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से घर-गृहस्थी का काम दिन भर बिना किसी रुकावट के करती थी अब उसे बच्चे के कारण झंझटों में फंस जाना पड़ता है। उसकी 'नौकरी' बंध गई एक नई जिम्मेदारी आ गई जिसमें उसे काफी समय देना पड़ता है। ऐसी अवस्था में माता खीझ जाती है और बच्चा उसके क्रोध का भाजन होता है। किन्तु यदि माता सावधानी बरते तो ऐसी स्थिति नहीं आ सकती। सर्वप्रथम उसे अपने दैनिक कार्यों को नियमित करना चाहिये। प्रत्येक कार्य का समय क्रम निश्चित कर ले। उसी समय क्रम में बच्चे के पालन-पोषण सम्बन्धी कार्यों को भी रखले। कुछ साधारण और अनुपयोगी कार्यों में कटौती कर दे। सिलाई-पुराई में से कुछ समय निकाल ले। इस प्रकार माता यह महसूस करे कि मुझे बच्चे के लिए कुछ समय निकालना है और वह समय निश्चित है। नवजात शिशु की उत्पत्ति के साथ-साथ आर्थिक समस्या भी उपस्थित हो जाती है। बहुधा माता-पिता इस अतिरिक्त व्यय को एक संकट समझने लगते हैं। कभी-कभी तो वे बच्चे को ही इसका कारण भी समझ बैठते हैं जो बच्चे के हित में अत्यन्त अलाभकर सिद्ध होता है। ऐसी अवस्था में माता पिता को अपने दैनिक खर्चों में ही कुछ कटौती करनी चाहिए जिससे इस नए खर्च की समस्या का समाधान सरल हो जाय। यदि परिवार

उसके साथ जुटी रहेगी। कुछ नवयुवतियाँ अच्छे वस्त्रों के पहनने पर बच्चे को हाथ से छूना भी पाप समझती है। किन्तु हमारा सरोकार उन माताओं से नही है जो सन्तति को अभिशाप समझती है अपितु हमें उनके प्रति सोचना है जिनके कपड़े बच्चे की सुश्रुषा से मैले हो जाते हैं। उनके लिए यह उत्तम होगा कि वे दोपहर के पश्चात् अपने स्वच्छ वस्त्रों का उपयोग करें और अपने जीवन की ताजगी का अनुभव करें जो प्रत्येक पति-पत्नी में स्वभावतः पाई जाती है इस प्रकार वह अपनी गन्दगी को दूर कर सकेगी और अपने नवयौवन को उल्लसित बना सकेगी।

आदर्श माता बनने के लिए नारी में कुछ गुणों की आवश्यकता होती है। सबसे आवश्यक गुण है उसे अपने प्रति दयालु होना, क्योंकि उसका यह गुण परिवार के प्रति उत्तरदायी होगा। उसके अच्छे कार्य परिवार के संचालन में सहायक होते हैं और ये कार्य शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टिकोणों से होते है। किन्तु इन कार्यों का सम्पादन वह श्रान्त अवस्था में कदापि नही कर सकती। इसके लिए उसे अवकाश की आवश्यकता होती है जो उसमें अच्छे गुणों की प्रेरणा दे सकता है। उदाहरणार्थ दिन भर चूल्हा फूंकने और कपड़े धोने के बाद माँ से जब बच्चा भोजन माँगता है तो निस्सन्देह माता झल्ला उठेगी और बच्चे की विशेष उच्छृंखलता पर एक आध चाँटे भी रसीद कर सकती है। जरा सोचिए। इसमें दोष किसका है। न माता ही दोषी है और न बच्चा ही। फिर है कौन? कोई नहीं। इसका कारण यह है कि माता ने ऐसा किया तो अपने दिन भर के अनवरत परिश्रम के कारण और बच्चे ने भोजन की माँग की अपनी भूख से विवश हो। अतः ऐसी अवस्था में माता को अवकाश देना अनिवार्य है। उसके लिए भोजन और निद्रा की जितनी आवश्यकता है उससे कम आराम की नहीं।

प्रत्येक माता का यह कर्तव्य होता है कि पहले बच्चे की उत्पत्ति के पश्चात् वह अपने उस समय को, जो सन्ध्या को घूमकर समाप्त करती थी, पुस्तकों के अध्ययन, संगीत प्रेम में अथवा ऐसी बातों में बितावे जिससे उन्हें बाह्य संसार का भी कुछ परिज्ञान हो। गर्भावस्था में

अध्याय ३

घर और वातावरण

शिशु-पालन में सबसे बड़ी समस्या घर और वातावरण है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु वातावरण से प्रभावित होती है फिर प्रकृति की अनुपम वस्तु बालक इससे किस प्रकार अछूता रह सकता है। बालक के उत्थान पतन में घर और वातावरण का जितना हाथ रहता है उतना सम्भवत किसी अन्य वस्तु का नहीं। मानव की उत्पत्ति ही प्रकृति के अनुरूप परिवर्द्धन के फलस्वरूप मानी जाती है। अत हमें बालक के पालन-पोषण में सबसे अधिक महत्व घर और वातावरण को देना चाहिये।

यह तो निश्चय है कि प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर घर नहीं पा सकता। उसके सम्मुख आर्थिक कठिनाइयाँ आ सकती हैं। घरों का अभाव भी एक कारण बन सकता है पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि बिना सुन्दर घर के बालक सुन्दर नहीं हो सकता। सुन्दर घर से हमारा अभिप्राय तड़क भड़क से युक्त नए ढंग के घरों से ही नहीं है। सुन्दर से हमारा अभिप्राय स्वस्थ से है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से जो गृह उत्तम जँचे उसे ही स्वस्थ घर कहा जा सकता है। उसमें खुली वायु आनी चाहिये। प्रकाश का भी अभाव नहीं हो। यों तो खुली वायु और प्रकाश का सेवन उद्यान और मैदान में किया जा सकता है पर इनका उपभोग स्वस्थ घर में भी हो सकता है। बार्जे और लम्बी चौड़ी खिड़की से भी इस कमी की पूर्ति की जा सकती है। यदि खिड़की के निकट बच्चे की चारपाई बिछा दी जाय तो वह वही आनन्द वहाँ ले सकता है जो उद्यान में लेता। उसके स्वास्थ्य पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। किन्तु गन्दे घरों में उन्हें ये वस्तुयें उपलब्ध नहीं हो सकेंगी। जो चल फिर सकते हैं उन्हें तो येन-केन प्रकारेण अच्छी वायु मिल सकती है पर बच्चे कहाँ जा सकेंगे। उन्हें घुमाना भी सब माता पिता

व्यवधान समुपस्थित हो जावेगा और वह अपना भोजन नियमानुसार न ले सकेगा जिस पर आगे के परिच्छेद में प्रकाश डाला जायगा। इसी प्रकार सोते समय यदि बच्चे को अधिक प्यार जता कर जगा दिया जाय और सोने में हस्तक्षेप किया जाय तो इसका बुरा प्रभाव बच्चे पर पड़ता है।

परिवार के कुछ लोग बच्चे को पहनाना-सजाना अधिक पसन्द करते हैं। प्राय दादा और दादी इसमें अधिक रुचि रखते है। कभी-कभी तो उनका प्यार इतना घर्राता है कि सोते शिशु को जगा कर अपना प्यार जताने लगते है और अच्छे वस्त्र पहनाते है। ऐसे अवसर पर माता को ध्यान रखना चाहिये कि बच्चे की निद्रा में अशान्ति न प्रस्तुत की जाय तथा उसका पहनावा-ओढ़ावा नहलाने के पश्चात् किया जाय। यदि उस गृह में रहने वाला सम्बन्धित परिवार भी शान्ति चाहता है और व्यवस्था का पोषक है तब तो बच्चे के हित में यह चीज लाभकर होगी। उस स्थिति में आपको भी चाहिये कि शान्ति स्थापित रखें और कभी-कभी बच्चे को आनन्द का साधन बना कर मनोरजन भी करें। इस प्रकार बच्चा आपके ही परिवार का ही नहीं अपितु सम्मिलित परिवार का मनोरजन कर सकेगा। इस प्रकार आपकी शान्ति नीरस न होकर सुखप्रद होगी।

यदि परिवार में सभी बड़े होते है और बच्चा एक ही होता है तो उसका महत्व अधिक होता है। सभी लोगो का ध्यान उसकी ओर जाता है किन्तु इसका उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि दूसरे बच्चो की सगति का पड़ता है। अत इस सगति का ध्यान रखना चाहिये। ऐसा न हो कि बच्चे का साथ बुरे बच्चो से हो जाय। ऐसी परिस्थिति में बच्चे के ऊपर भी वैसा ही प्रभाव पडेगा। बच्चे के भोजन के विषय में अधिक सतक रहना चाहिये। उसके खाने के समय किसी प्रकार की शीघ्रता और अशान्ति का उपक्रम नहीं उपस्थित होना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि माता बच्चे को अपने कमरे में ही अपने साथ खाना खिलाय। इससे बच्चे को अशान्ति से सुरक्षित किया जा सकता है और उसकी माता से घनिष्ठता भी बढ़ती है। बच्चे का इधर

अच्छा पड़ता है। वह इससे सस्ता होता है। बच्चे को खेलने के लिए यहाँ अत्यधिक स्थान मिल सकता है तथा बच्चे की हिफाजत भी हो सकती है। उसके खेलने के स्थान का उपयोग बड़े लोग भी उस समय कर सकते है जब कि वह खेल चुका हो। उसके खिलौने आदि से बड़ो का कोई हानि भी नही हो सकती है। वायु और प्रकाश की कोई कमी एसे घरो में नही रहती है। ऐसे स्थानों पर अधिक सर्दी और गर्मी से भी उसकी रक्षा हो सकती है। इसके विपरीत यदि सारा परिवार एक ही कमरे में रहता है तो गर्मी अथवा सर्दी से सबको कष्ट पहुंच सकता है। अतः घर ढूंढ़ने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बच्चे के लिए पर्याप्त स्थान रहे जहाँ वह सरलतापूर्वक विचरण कर सके और खेल सके। इसमें उसे किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित होनी चाहिये।

घर में अधिक से अधिक कमरे की व्यवस्था होनी चाहिये। एक भोजनालय, एक सामान रखने का कमरा, एक अतिथियो के लिए, एक बच्चे के लिए और कुछ कमरे परिवार के सोने के लिए आवश्यक है। यदि परिवार में ४ सदस्य है तो चार कमरे सोने के लिए चाहिये। एसा होने से परिवार के सभी लोग सुखी रह सकेंगे और शिशु भी स्वच्छन्दतापूवक रह सकता है। एक छोटी सी वाटिका और एक खेल का मदान भी घर के सामने ही होना चाहिये जहाँ शिशु खेल सके और मनोरंजन भी कर सके। यद्यपि हमारे देश में घर की यह व्यवस्था सरल नही है फिर भी इसका यत्न करना चाहिये। जिस प्रकार परिवार के लिए भोजनालय अध्ययन-गृह और शयनगृह की आवश्यकता है ठीक उसी प्रकार बच्चे के लिए भी एक पृथक कमरा आवश्यक है। इससे उसकी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा पहुँचने की आशंका नहीं रहती है। इसके साथ ही परिवार के अन्य सदस्यो को बच्चे के कारण कोई कष्ट भी नही उठाना पड़ता है।

भोजनालय के चयन में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कमरा छोटा न हो क्योंकि उसमें माता के साथ शिशु का पदार्पण भी सम्भव है। यह कमरा बहुत बड़ा होना चाहिये जिसमें एक ओर यदि

मुह धोने की आदत जन्मजात नही होती है बल्कि उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य किया जाता है। स्वच्छता की ओर उन्ह ले जाने के लिये माता-पिता ही सत्य रूप में उत्तरदायी होते ह ।

कमरे की सफाई भी आवश्यक होती ह। कमर की सारी चीजो को ऐसी स्थिति में रखना चाहिये जिससे सफाई में कोई अडचन न होने पावे। फर्श की धुलाई भी सप्ताह में एक वार करनी चाहिये। कमर के भीतर रखे गए सामाना का स्थान एसा नहीं होना चाहिये कि बच्चे उसे पा जायें और हानि कर बैठ। टूटने वाली चीजें, शीशे या मिट्टी के बर्तन, टेबुल लम्प आदि ऊँचे स्थान पर होना चाहिये जिससे बच्चे प्रयत्न करन पर भी न पा सकें। कभी-कभी एसा होता है कि सामानो की अव्यवस्थित अवस्था में कमरे की सफाई भी नहीं हो सकती है। इससे नाना प्रकार के कीड-मकोडे पैदा हो जाते ह और बीमारियो को उत्पन्न करते है। अत इन बातो से सावधान रहना चाहिये। कमरे के भीतरी भाग में दीवालो आदि की सफाई भी माह में एक बार कर लेना उचित होता ह।

शयन गृह अथवा अतिथि गृह की सजावट अपनी इच्छा से की जाती है। किन्तु छोटे बच्चे बडो की अपेक्षा सज और रंगे कमरे अधिक पसन्द करते हैं। माता पिता को चाहिय कि वह अपने कमरे को सजाने के साथ बालका के कमरे को भी सजावें। अच्छे-अच्छे चित्र और खिलौनो से उनका कमरा सजा होना चाहिये। अपने कमरे को सजता हुआ देख बच्चो को प्रसन्नता होती है और बडा होने पर उसकी सजावट में हाथ भी बँटाते ह। माता-पिता को अपनी अतिरिक्त आय का कुछ अंश कमर की सजावट में भी व्यय करना चाहिये। अच्छे-अच्छे ऐतिहासिक, भौगोलिक प्राकृतिक चित्रो को उनके कमरो में लगाना चाहिय। इससे अल्पायु में ही इन चीजो का ज्ञान हो जाता ह और इसी वहान बौद्धिक विकास भी होता ह।

बच्चों के खेलने के कमरे तथा क्रीडास्थल की भी सफाई अनिवार्य ह। उन स्थाना पर जहाँ वे बराबर खेला करते हैं अथवा मनोरजन किया करते हैं किसी प्रकार की गन्दगी उपेक्षणीय ह। इससे

गन्दे स्थानों में रहने की उन्हें आदत-सी पड़ती है। वाटिका आदि में भी जहाँ बच्चे आया-जाया करते हैं, स्वच्छता अनिवार्य होती है। घर के चारों ओर स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से सफाई करनी चाहिये। इससे उनमें भी सफाई की आदत पड़ती है और उनके स्वास्थ्य पर भी प्रत्यक्ष रूप में प्रभाव पड़ता है।

अध्याय ४

एक साल का बच्चा

माता-पिता को अपनी ओर आकृष्ट करने वाली क्रिया बच्चे का रोना है। बहुधा यह प्रश्न माता पिता के मस्तिष्क में गूजा करता है कि बच्चा रो क्या रहा है। किन्तु जिस जिज्ञासापूर्ण भावो में वे बच्चे के रोने को लेते ह वह वास्तव में उतना महत्वपूर्ण नही है। रोना बच्चे की स्वाभाविक क्रिया ह। हाँ, किसी विशेष अवस्था में यदि बच्चा रो रहा हो तो उसे गभीरतापूवक स्वीकार करना चाहिये और उस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। उत्पत्ति के साथ ही बच्चे का रुदन प्रारम्भ हो जाता ह। कारण यह है कि बच्चा माँ के उदर से निकलते ही एक सर्वथा नवीन वातावरण में आता है। यहाँ उसे अपेक्षाकृत कम गर्मी मिलती है। वह इस नए वातावरण से घबराता है, भय खाता ह और इसीलिए रोता ह। यही कारण है कि वह माँ की गोदी में मुह छिपा कर बराबर पडा रहना चाहता है। माता का दूध पीना उसे केवल क्षुधा-तृप्ति के लिए ही आवश्यक नहीं जान पडता वरन माता की गोद को बच्चा अपनी सुन्दरतम शरणास्थली समझता है। वह उसकी गोद में अपनी रक्षा सुरक्षित समझता है। बहुत दिना तक वह किसी की गोद में भी चुपचाप पडा रहना पसन्द करता है। कुछ माताएँ कुछ कारणोवश बच्चे की तृप्ति भर दूध नहीं पिला पाती ह और उह ऊपर का दूध पिलाती ह। पर ऊपर का दूध केवल पेट भर सकता ह बच्चे की रागात्मक प्रवृत्तियो को सतुष्ट नहीं कर सकता। अत उसे शारीरिक और मानसिक सतुष्टि देने के लिए कोई न कोई उपाय करना आवश्यक है। सबसे सुन्दर उपाय है बच्चे को अधिक प्यार देना। माता यदि ऊपर का दूध पिलाती है तो मानसिक सतुष्टि के लिए बच्चे को अपनी गोद में कम से कम उतने

समय तक रक्खे जितने समय में व उसे पूरा दूध पिलाती। इसे अतिरिक्त सुश्रुषा कहत हैं। कुछ माताएँ अपने बच्चों के पालन-पोषण म सचमुच बहुत अधिक ध्यान देती हैं और वे इस सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिशु-पालन सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ रखती ह। ऐसे पत्रों का पठन-पाठन निश्चय ही ज्ञानप्रद होता है किन्तु इन पर पूर्णतया अवलम्बित रहना सवदा हितकर नहीं होता। आपको अपने बच्चे का पालन करना ह न कि पत्र-पत्रिकाओं में उल्लिखित बालक का।

आहार—पालन-पोषण के सम्बन्ध में सबसे बडी क्रिया है बच्चे को दूध पिलाना। नियम तो यह ह कि बच्चे को चौबीस घंटे में पाँच बार दूध पिलाया जाय। प्रातःकाल ६ बजे, १० बजे, फिर दोपहर में २ बजे, ६ बजे सायंकाल और १० बजे रात्रि में। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पाँच बार से छ बार न होने पावे। हाँ नियमितता लाभप्रद अवश्य है पर यदि किसी कारणवश बच्चा सोकर उठने के बाद फिर दूध के लिये रोता है तो उसे दूध दिया जाना चाहिये। ऐसा नहीं करना चाहिये कि घडी देखकर ही बच्चे का दूध दें चाहे वह भूखों रो-रोकर जान ही क्यों न दे दे। कुछ माताएँ यह चाहती ह कि बच्चे को जितना अधिक खिला-पिला दें। उन्ह यह निश्चयपूर्वक जान लेना चाहिये कि अधिक भोजन कम भोजन की अपेक्षा अधिक हानिकारक होता है। अत बच्चों को ठूस-ठूस कर खिलाने की चिन्ता में कभी भी नहीं पडना चाहिये। इससे बच्चों को हानि ही पहुँचेगी।

निद्रा—भोजन क बाद बच्चे के सोने की समस्या सम्मुख आती ह। प्रारम्भ में दो-तीन महीना तक बच्चे खूब सोते हैं। ज्यों-ज्यों व बडे होते जाते ह त्यों-त्यों वे सोने में कमी करते जाते हैं। इसके कई कारण ह। प्रारम्भ में बच्चे का ज्ञान-कोष बहुत कम होता ह। धीरे-धीरे इसमें अभिवृद्धि होती जाती है। इसी अभिवृद्धि के साथ व अन्य परिचित वस्तुओं से अपना सम्पर्क स्थापित करते हैं और उसमें अपना कुछ समय देते हैं। उनकी जिज्ञासा भी इसके मूल में ह। बच्चे की पूर्ण नींद का भली भाँति ध्यान रक्खा जाना चाहिये क्योंकि इस पर भी उनका स्वास्थ्य बहुत कुछ निर्भर ह। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया

है बच्चे छोटी अवस्था में अधिक सोते हैं। कभी-कभी तो इतना सोते हैं कि दूध पीना तक भूल जाते हैं। आलसी माताएँ बालक की ऐसी अवस्था से अनुचित लाभ उठाती हैं किन्तु यह ठीक नहीं है। बालक को बार-बार जगाकर दूध पिलाना भी अच्छा नहीं है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें बराबर सोता हुआ छोड़ दिया जाय। बच्चे की नींद दो कारणों से पूरी नहीं होती है। पहला कारण तो उनका पेट न भरा रहना और दूसरा कारण है नींद में बाहरी अशान्ति उत्पन्न हो जाना। पेट न भरा रहना प्रमुख कारण है। बच्चे को पाँच बार दूध पिला देने से ही उसका पेट नहीं भर जाता है। देखना यह चाहिये कि पाँचो बार उसने ठीक से पूरा दूध पिया है कि नहीं। बच्चा शान्तिपूर्वक दूध पीना चाहता है। दूध पीते समय यदि किसी प्रकार की बाधा पड़ती है तो वह दूध पीना छोड़ देता है। कुछ माताएँ काम करती रहती हैं और साथ-साथ बच्चे को दूध भी पिलाती रहती हैं। यह ढंग सर्वथा अनुचित है। इसमें बच्चे का ध्यान पूर्ण रूप से दूध पीने की क्रिया की ओर नहीं रहता है। वह दूध पीते समय माता का प्यार भी चाहता है। माता अपना काम करे और बच्चा अपना यह सम्भव नहीं है। दूध पीने और पिलाने की क्रिया एक होनी चाहिये। एकाग्र होकर ही माता को दूध पिलाना चाहिये। दूध पिलाते समय वह किसी से जोर से बातें न करे। गुनगुनाना भी ठीक नहीं है क्योंकि बच्चे का ध्यान बँट जायगा। चतुर माताएँ रात्रि में बच्चे को कुछ देर से दूध पिलाती हैं अथवा भोजन करने वाले बच्चे को भोजन देती हैं। ऐसा करने से बच्चा रात्रि के शेष समय में एक बार भी नहीं उठता है और वह फिर प्रातःकाल ही भूख का अनुभव करता है। यदि रात्रि में बच्चा जागता है तो उसे थपकियाँ देकर सुलाने की चेष्टा करनी चाहिये। बहुधा देखा यह जाता है कि जब-जब बच्चा जगता है तब-तब माता उसे दूध पिलाने लगती है। बच्चा दूध पीते-पीते सो जाता है। दो-चार दिन बाद ही बच्चे की आदत पड़ जाती है और वह रात्रि में कई बार दूध पीने के लिये उठता है। कुछ माताएँ बच्चों को सुलाने का एकमात्र साधन स्तन-पान समझती हैं जैसे बच्चे को स्वभावतः

नीद आ ही नही सकती। ऐसी माताएँ बच्चे के मुह से रात्रि में सोते समय सदैव स्तन लगाये रहती हैं। इसका परिणाम असुन्दर होता है और ऐसे बच्चे ही दिन में माता को कार्य नहीं करने देते। वे हर समय माँ की गोद से चिपटा रहना चाहते हैं। अत बच्चे की पूर्ण नीद के लिये इन बातो को सवदा ध्यान में रखना चाहिये।

शान्ति—शान्ति बच्चे के आहार और निद्रा दोनों के लिये आवश्यक है। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। बच्चे की शान्ति बनाये रखने के लिये यह ध्यान रखना चाहिये कि उसकी भावना बडी कोमल होती हैं और साथ ही ज्ञान-क्षेत्र भी पर्याप्त सीमित रहता है। अज्ञात वस्तुओ को अज्ञात रूप मे देखना भी सदा कौतूहल का कारण बनता है। कौतूहल शान्ति और अशान्ति दोनों उत्पन्न कर सकता है। बच्चों के लिये अपरिचित वस्तुएँ बहुधा अशान्ति ही व्याप्त करती है। किन्तु कुछ अपरिचित वस्तुएँ उसकी प्रसन्नता का कारण भी बनती है। अत बच्चे की शान्ति बनाये रखने के लिये यह सर्वदा ध्यान में रखना चाहिये कि किसी वस्तु को किस रूप में बच्चे के सामने लाया जाय। एक ही वस्तु बच्चे के भय और हर्ष दोनो का कारण बन सकती है। यह पूर्णतया इस बात पर आधारित है कि वह किस रूप में बच्चे के सम्मुख उपस्थित की जा रही है। किन्तु कुछ वस्तुएँ भय का ही कारण बनती हैं। जैसे-जैसे बच्चे का ज्ञान बढता जाता है वैसे-वैसे ऐसी स्थितियाँ अधिक आती हैं। बच्चा जब तक यह नहीं जानता कि साँप के काटने से आदमी मर जाते हैं तब तक वह साँप से खेलने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखलायगा। अभिप्राय यह है कि बच्चे के सम्मुख भयोत्पादक वस्तुओं को नहीं रखना चाहिये। कभी कभी माताएँ बच्चो को डराना चाहती हैं। वे विचित्र प्रकार की बोलियाँ बोलकर बच्चे को भयभीत करती हैं। यह सर्वथा अनुचित है और इससे बालक को मानसिक एव शारीरिक दोनों प्रकार की क्षतियाँ पहुँचती हैं। बिल्कुल छोटे बच्चे को (तीन-चार महीने के बच्चे को) तो भीड व शोर-गुल से भी बचाना चाहिये। घर के शान्त वातावरण से निकल कर जब बच्चा बाजार के अशान्त वातावरण में

पहुँचता है तो उसे घबराहट होती है। मोटर की पोपों से वह शायद एक बार प्रसन्न हो जाय किन्तु वह सड़क की घड़घड़ाहट और बाजार की चहल-पहल में बहुत देर तक स्वस्थिर नहीं रह पायेगा और शीघ्र ही घबराकर माँ की गोद से चिमट जायगा या रोना शुरू कर देगा। अतः छोटे बच्चों को बाजार में जहाँ बहुत अधिक शोर-गुल रहता है, नहीं ले जाना चाहिये। किन्तु सबसे बड़ी समस्या तो घर में ही अशान्ति की है। हमने ऐसे घर देखे हैं जहाँ बराबर पारिवारिक अशान्ति व्याप्त रहती है और रोज महाभारत हुआ करता है। ऐसे अशान्त वातावरण का प्रभाव बच्चे पर बहुत बुरा पड़ता है। छोटे से छोटा बच्चा भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इससे प्रभावित होता है। किन्तु कुछ घर ऐसे भी देखने को मिलते हैं कि जहाँ पारिवारिक कलह न होने पर भी अशान्ति व्याप्त रहती है। परिवार के सदस्यों की प्रवृत्ति ही कुछ ऐसी होती है कि वे शान्ति नहीं रहने देते। शान्ति के पीछे जैसे वे लाठी लेकर पड़े रहते हैं। हर बात जोर से बोलते हैं। पड़ोसी समझते हैं झगड़ा हो रहा है और वे करते हैं प्रेमालाप। घर की यह परिस्थिति पारिवारिक कलह से भी बुरी है क्योंकि झगड़ा दिन भर में दो-एक बार हो सकता है और इनका 'प्रेमालाप' रातदिन चलता है। अतः हमें इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि घर में किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न न होने पावे। अशान्ति के कुअवसरों पर भी बच्चे की शान्ति को सुरक्षित रखने की कोशिश करनी चाहिये। तभी बालक मानसिक विकास कर पायेगा अन्यथा वह अशान्ति में ही उलझा रह जायेगा और चिड़चिड़ा हो जायेगा।

बालक का रोना—प्रारम्भ में ही बालक के रुदन की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए साधारण और असाधारण ढंग से रोने की ओर संकेत किया गया था। प्रत्येक माता-पिता बालक के साधारण एवं असाधारण रोने की परख कर सकता है। इस सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। बालक की चीख का कारण भय या कोई शारीरिक कष्ट हो सकता है और साधारण रोने के अनेक कारण हो सकते हैं। उदाहरणार्थ भूख लगना, नींद टूट जाना, अकेलापन आदि।

अत स्थितियाँ दोनो ध्यान देने योग्य ह । पहली अवस्था में बालक की रक्षा के लिए और दूसरी में उसकी सुश्रुषा के लिए दौड़ पड़ना स्वाभाविक हैं। पर घबराये हुए रूप में या घबराहट में चिल्लाते हुए बच्चे के पास जाना उस और घबरा देना ह । तेजी में मल जाय और जाना भी चाहिये पर शान्त और स्वस्थिर मस्तिष्क से । यदि बालक को किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट पहुँचा ह तो उसे दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। सर्वप्रथम उसे गोद में उठा लिया जाय। यह हर दशा में लाभप्रद है। इसस बच्चे की घबराहट या उसका भय काफी मात्रा में कम हो जायेगा । तत्पश्चात् ध्यान दें कि उसे क्या कष्ट ह । यदि उसे कोई कष्ट नहीं है तो थोड़ी देर तक पुचकार कर और लाड-प्यार करके फिर सुला दीजिए । सुलाकर चले आइए । वह थोड़ी देर तक तो रोयेगा पर बाद में चुप हो जायेगा । यदि अब भी नहीं चुप होता है तो समझ लीजिए कि उसको कुछ आवश्यकता है, उसे भूख लगी होगी या अपच के कारण पेट के दर्द स वह परेशान होगा थोड़ी दर तक उसे सहलाइये, हिलाइये-डुलाइय, बिस्तरा बदल कर फिर सुला दीजिए। अब वह चुप हो जायेगा । यह साधारण विधि है। यदि इन सारे प्रयोगों के पश्चात् भी वह नहीं चुप होता ह तो निश्चय ही उसे कोई आन्तरिक पीड़ा है जिसका उपचार आवश्यक ह। किन्तु साधारणतया बच्चों का रोना स्वाभाविक रूप में होता ह और टहलाना, बहलाना आदि क्रियाएँ उसके लिए पर्याप्त हैं।

खेल और साथ—बालक के जीवन को मुख्य रूप स प्रभावित करने वाली वस्तु प्रारम्भिक खेल और संग-साथ हैं। किन्तु बिल्कुल कम आयु में संग-साथ (Company) का कोई विशेष प्रश्न नहीं उठता क्योंकि उस समय बालक घर की चहारदीवारी तक ही सीमित रहता ह। किन्तु खेल का प्रश्न तो पदा होने के कुछ सप्ताहो बाद स ही उठ जाता है। खेल बालक का जीवन ह। लड़का पालने पर लेटे-लेटे हाथ, पर फेंका करता ह। यही उसका खेल ह। इसमें माता-पिता के साथ की आवश्यकता पड़ती ह। उसके परों को सहलाना, हाथो को क्षण भर के लिए थामकर हिलान से रोक दना, हँसना, गाना आदि ही उनके खल में सहयोग दना

है। जब बच्चा कुछ और बडा हो जाय और वह अपने हाथ-पैर पर थोडा काबू पा जाय तो उसके खेल में और सक्रिय योग दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ लेटे हुए बच्चे को किसी बडे हल्के कागज से (अखबार आदि से) ढक दीजिए। वह हाथ-पैर चलाकर उसे हटा देगा। आप हँसकर उसकी सफलता की स्वीकृति दीजिए। सम्भवत वह भी हँस पडेगा। इसी प्रकार दो चार बार कीजिए। जब वह कुछ और बडा हो जाय और अपना शरीर साधने का प्रयास करने लगे तो उसे अपनी उँगली पकडाइए। वह उठने का प्रयास करेगा। इसी प्रकार के अन्य साधनो द्वारा आप बच्चे के खेल में योग दे सकते हैं।

बच्चे के खेल में सहायक होने के लिए निश्चित समय निकालना आवश्यक है। घर के काम-काज से निवृत्त होकर जब चाहे खेला दिया यह नीति सुन्दर नही है। बच्चे के खेल में भाग लेने को भी अपने दैनिक कार्य-क्रम में सम्मिलित कीजिए और उसमें पूर्ण रुचि लीजिए उतनी ही जितनी आप अपने मनोरंजन में लेते है। भली भाँति खेल लेने वाला बालक सुख की नीद सोयेगा और बार-बार रोकर आपको परेशान नहीं करेगा।

आदत डालना—बहुधा लोग बच्चे को अच्छी आदतें शीघ्र सिखा देने के फेर में पड जाते है। इन अच्छी आदतों में सफाई की आदत विशेष महत्वपूर्ण है। अधिकाश माता पिता चार-पाँच मास के बच्चे से भी इसकी आशा करने लगते है। वे चाहते है कि बच्चा बिल्कुल गन्दा न रहे। कुछ लोग तो यहाँ तक आशा करने लगते हैं कि पाखाना या पेशाब करने के पहले या बाद में ही वह रोकर सूचित क्यो नही कर देता है। अथवा कभी-कभी मल पर हाथ-पैर पटकनेवाले बच्चे पर क्रोधित होने वाले माता-पिता भी देखे गये हैं। पर यदि विचार किया जाय तो बालक का इसमें बिल्कुल दोष नही हैं। स्वच्छता और सफाई की भावना विकसित मस्तिष्क की वस्तु है अत प्रारम्भ में ही बच्चे में जबर्दस्ती यह गुण उत्पन्न करने की कोशिश करना सर्वथा अनुचित है। बच्चे की गन्दगी पर उसे 'गन्दे' की उपाधि देना अथवा 'छि छि' करके उसे उपेक्षित दृष्टि से देखना भी उचित नही है। इससे बच्चे के शारीरिक एव भावात्मक विकास में बाधा पहुँचेगी। कुछ माता पिता अपने बच्चे में सफाई की आदत डालकर

दूसरों के सम्मुख गर्वान्वित होने का अवसर प्राप्त करना चाहते हैं। यदि संयोगवश किसी प्रकार उन्हें सफलता भी मिल गई तो वह स्थायी नहीं रह पाती है क्योंकि जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया है स्वच्छता विकसित मस्तिष्क की वस्तु है। आदत तो बाद में आती है। हाँ कुछ छोटे बालकों में भी इस भावना के चिह्न देखे गये हैं। छः-सात महीने के बच्चे भी पेशाब या पाखाना करने के लिए खाट पर से उतरने का प्रयास करते हुए देखे गये हैं। इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् हाथ-मुँह पोंछते हुए भी देखे गये हैं। किन्तु इसके लिए अत्यन्त छोटी आयु (पाँच-छः मास की आयु) में उन्हें बाध्य करना उचित नहीं है। आप उन्हें साफ-सुथरा रखिए, फिर तो वे स्वयं गन्दगी से घृणा करेंगे। कभी-कभी देखा जाता है कि सात-आठ मास के बच्चे साफ-सुथरी वस्तुओं की ओर लपकने लगते हैं, स्वच्छ वस्त्र प्रसन्नतापूर्वक धारण कर लेते हैं। किन्तु यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि जो बच्चा देर में सफाई सीखता है उससे यह समझना चाहिए कि उसका मानसिक विकास भी देर में हो रहा है। स्वच्छता की भावना में ढिलाई मस्तिष्क की ढिलाई का द्योतक नहीं है क्योंकि बालक को आकर्षित करनेवाली अनेक वस्तुएँ हैं जिनमें उलझकर वह सफाई की उपेक्षा कर सकता है।

बच्चे की सफाई और स्नान का सीधा सम्बन्ध है। अतः लगे हाथ इस पर भी विचार कर लेना चाहिए। हमारे देश में बच्चे को स्नान कराने की प्रथा केवल थोड़े से शिक्षित वर्ग में ही है। लोग बच्चे का नहाना आवश्यक नहीं समझते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि बच्चे का नहाना किसी प्रौढ़ की अपेक्षा अधिक आवश्यक है और इसमें किसी प्रकार की ढिलाई का अर्थ है बच्चे को अस्वस्थता की ओर अग्रसर करना। अतः हमें चाहिए कि भोजन की भाँति बच्चे के स्नान पर भी उचित ध्यान दें और एक निश्चित समय पर उसे नियमित रूप से स्नान करायें। स्नान कराने का सर्वोत्तम समय दोपहर में दस से दो के बीच में होता है क्योंकि माता को घर के काम-काजों से उसी समय पूर्ण अवकाश मिल सकता है। बच्चे को नहलाने का काम खिलाने से भी अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण है क्योंकि बच्चा बराबर डरा करता है। उसे केवल पानी से ही भय

नहीं रहता वरन् वह यह भी डरता है कि कहीं पकड़नेवाले के हाथ से फिसल न जाऊँ। अतः माता को ही यह काम करना चाहिए अथवा कोई दूसरा व्यक्ति जिसे इसका अनुभव हो बच्चा को नहलाये। बच्चा अनुभवहीन और अनुभवी हाथों की परख बहुत शीघ्र कर लेता है। नहलाते समय हर प्रकार की सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए।

माँ का दूध छुड़ाना—हमारे देश में बच्चे यदि अवसर मिले तो पाँच-पाँच, छः-छः वर्ष तक माँ का दूध पीते चलते हैं। किन्तु उन्हें ऐसा अवसर बहुधा नहीं ही मिलता है। कुछ लोग बहुत शीघ्र बच्चे से माता का दूध छुड़ा देना चाहते हैं। ऐसा करने में वे सर्वथा भूल करते हैं। बच्चे को कम से कम नौ मास तक माता का दूध पीने देना चाहिए। माता के शुद्ध दूध से बच्चे को काफी बल मिलता है। दूध छुड़ा देने के बाद प्रारम्भ में बच्चे को स्वयं खिलाना चाहिए। धीरे धीरे वह स्वयं खाने की कोशिश करने लगेगा। लगभग ९-१० साल का बच्चा अपनी उँगलियों पर अधिकार पाने लगता है और वह स्वयं भोजन करने में समर्थ होने लगता है। पर कुछ देर भी हो सकती है जिससे घबराना नहीं चाहिए। बच्चा हल्के बर्तनों को स्वयं उठाना चाहता है और अपने हाथ से पानी या दूध पीने का इच्छुक रहता है। उसे ऐसा अवसर देना चाहिए। दूध छुड़ा देने के बाद माता को चाहिए कि वह बच्चे को वांछित प्यार बराबर देती रहे जिससे उसे कुछ महसूस न हो।

बालक का विकास—बालक के शीघ्र विकास पर लोग प्रफुल्लित होते हैं और मन्द विकास पर चिन्तित। यदि किसी रोग के कारण विकास रुका हुआ है तब तो यह चिन्ता की वस्तु है अन्यथा दूसरे बच्चों की तुलना करने पर यदि विकास में कमी जान पड़े तो घबराने की कोई बात नहीं है। सभी बालकों का विकास समान रूप से नहीं होता है। जो बालक शीघ्र शारीरिक या मानसिक विकास कर लेता है वह देर में विकास करने वाले बालक से तेज है ऐसा सोचना सर्वथा भ्रममूलक है। विकास का आगे या पीछे होना कोई महत्व नहीं रखता।

अध्याय ५

बच्चे का दूसरा साल

कालान्तर में बच्चा लड़खड़ा कर चलने लगता है। सरकने का प्रयास करने लगता है। अपने प्रयास में उसे प्रसन्नता होती है। किन्तु वह तुरत सरकने नहीं लगता है। इस स्थिति तक पहुँचने में उसे काफी संकटों का सामना करना पड़ता है। प्रारम्भ में उसका ज्ञान बहुत सीमित रहता है और वह केवल अपनी माता को अपनी पोषिका के रूप में पहचानता है। बस यही उसका ज्ञान है। अपने ही अगों का पूर्ण ज्ञान उसे नहीं रहता है। उपयोग की क्षमता तो बिल्कुल नही रहती।

क्रमश: यह अन्य वस्तुओं से परिचित होता है। उसका ज्ञान-कोष बढ़ता है और वह बाह्य जगत की अधिकाधिक वस्तुओं से परिचय प्राप्त करने लगता है। अब वह अपने अवयवों का बोध करने लगता है। अपने अँगूठे तथा उँगलियों का पता लगा लेता है। उनका उपयोग करना चाहता है। वह हँसता है और मुस्कराता है। कुछ बच्चे बहुत ही कम अवस्था में मुस्कराने लगते हैं। अपने माँ की उपस्थिति का बोध वे हँसकर, मुस्करा कर या हाथ-पैर फेंककर हमें कराते हैं। धीरे-धीरे उनकी मानसिक एवं शारीरिक शक्ति में वृद्धि होती जाती है और वे एक दिन बिना किसी व्यक्ति के सहारे उठ खड़े होने का प्रयास करते हैं।

चलना और बोलना—क्रमश: आगे बढ़ते-बढ़ते बच्चा उस स्थिति को पहुँचता है जब वह स्वतन्त्र रूप से चलने लगता है। इस सम्बन्ध में केवल इतना सूचित कर देना पर्याप्त होगा कि कभी भी तुलनात्मक दृष्टि से बच्चा का विकास मत देखिए। यदि आपका मुन्ना पड़ोसी लल्ला से चार छ मास बाद में चलना सीखता है तो इसमें कोई घबराहट की बात नहीं है। प्रत्येक बालक अपने लिए उपयुक्त समय में ही अपना विकास करता है। उसमें जो आपकी सहायता [illegible] है वह यह है कि आप स्वतंत्रता

पूवक बालक को विकास करने का अवसर दें। उसे प्रोत्साहन दे सकते हैं और साथ ही स्वावलम्बी बनने के लिए उचित सहायता भी प्रदान कर सकते हैं। किन्तु हाथ पकड़ कर जबर्दस्ती चलना सिखाना कोई अर्थ नहीं रखता और इससे बालक को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता है।

ठीक यही स्थिति बच्चे की अभिव्यक्ति की भी होती है। वह अनुभव करता है पर अपनी अनुभति की अभिव्यक्ति में वह विवश हो जाता है। कुछ माता-पिता बहुत चिन्तित हो जाते हैं और वह यहाँ तक निश्चय कर लेते हैं कि जब तक बालक स्वय किसी वस्तु का नाम लेकर न माँगे तब तक उसे वह वस्तु न दी जाय, पर यह सरासर अन्याय है। बालक के साथ सुलझे हुए शब्दों में धीरे-धीरे बात कीजिए और फिर देखिए कि वह दो-चार बार में स्वय समझने लगेगा और बोलने में भी सफल होगा। बालक हमारे अनुकरण तब तक नहीं करेगा जब तक वह इसमें अभिरुचि न लेने लगे।

बच्चे की भाषा के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय यह होती है कि वे कुछ शब्दो का उच्चारण अपने ढग से करते हैं। पानी के लिए 'मम' कहते हुए सभी बालक देखे जाते हैं। इसी प्रकार उनके कुछ अपने शब्द होते हैं। इन्हीं शब्दो का प्रयोग वे बराबर करते हैं और इन्हें शीघ्र नहीं छोड़ना चाहते। हमें चाहिए कि हम उनके शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में न करें। उचित भाषा के ज्ञान के अभाव में बच्चा घर से बाहरी क्षेत्र में कठिनाई का अनुभव करेगा।

स्वतन्त्रता और सुरक्षा—जब बच्चा इधर-उधर चलने लगता है तो माता-पिता के सम्मुख एक भ्रमात्मक समस्या उपस्थित हो जाती है। वह है उनकी देख रेख। इसे भ्रमात्मक समस्या की सज्ञा इसलिए दी गई है कि वास्तव में यह कोई समस्या नहीं होती पर माता-पिता अपने बालकों की ओर बहुत उदासीन रहना चाहते हैं और उसे चुपचाप लिटाकर अपना काम करने का अवसर निकालना जानते हैं। किन्तु इस स्थिति में आकर बच्चा उन्हें चुपचाप अपना काम करने नहीं देता। वे खाट पर लिटायेंगे, वह उतर आयगा। वे किसी ऊँची चौकी या मेज पर बैठा देंगे वह चिल्ला-चिल्लाकर आसमान सर पर उठा लेगा। इस पर भी यदि वे

नहीं मानेंगे उसे नहीं उठायेंगे तो वह गिरने का अभिनय करेगा और बहुत सम्भव है 'गिरी गिरी' कहकर चिल्लाये भी। यही कारण है कि ऐसे माता पिता के लिए यह अवस्था एक प्रकार की समस्या-सी लगती है। सतर्क माता-पिता के सम्मुख भी यह स्थिति महत्व रखती है पर समस्या नहीं बनती। वे जानते हैं कि बच्चा शक्ति ग्रहण कर रहा है उसे इसके लिए अवसर देना चाहिए। वे बिल्कुल ठीक सोचते हैं। उन माता-पिता की स्थिति अत्यन्त दयनीय है जो इस डर से कि बच्चा अपना कुछ अहित न कर ले उसे बराबर घर रखते हैं। हर समय बच्चे, को आश्रित बनाये रखने में ही वे उसकी सुरक्षा की कल्पना करते हैं। माना कि इस प्रकार बच्चा पूर्ण सुरक्षित रहेगा किन्तु यह सुरक्षा उसके विकास में बाधा पहुँचायेगी और वह हर प्रकार से हीन होगा। वास्तव में स्वतन्त्रता और सुरक्षा के समन्वित रूप में ही बालक का हित निहित है।

कुछ पैसे वाले बच्चों की गाड़ी (Prams) खरीद सकते हैं और उसमें बिठाकर वे बच्चा को घुमा-टहला सकते हैं। उसे पार्क में ले जाकर खेलने के लिए छोड़ सकते हैं पर यह प्रत्येक माता-पिता के लिए सम्भव नहीं है। अतः वे केवल गोद का ही सहारा ले सकते हैं और गोद में लेकर ही वे बच्चे को पार्क तक ले जा सकते हैं। पार्क में ही बच्चा को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जा सकती है क्योंकि वहाँ गिरने पर चोट लगने की आशंका नाम मात्र की रहती है। पार्क की वायु भी अपेक्षाकृत स्वस्थ होती है। यदि पार्क की भी असुविधा हो तो घर में कोई ऐसा भाग निर्धारित कर लें जहाँ बालक को स्वतन्त्रता दी जा सके। स्वतन्त्रता में सुरक्षा का उतना ही ध्यान रखना चाहिए जिससे बालक को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने पाये। बालक को स्वयं टहलने का अवसर देना अत्यन्त आवश्यक है।

बालक को थोड़ी देर तक 'एकान्त' का अनुभव भी करा देना चाहिए। 'एकान्त' से हमारा अभिप्राय नीरव स्थान से नहीं है वरन् उस स्थान से है जहाँ बच्चा अपने को माता-पिता के संरक्षण से दूर और अन्य लोगों के आस-पास समझे। वह देखेगा कुछ समय में की कोशिश करेगा और इस प्रकार बाहरी लोगों से भयभीत होने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क

से निकल्ती जायगी। परिचय ही प्रेम बन जाता ह। अत बाह्य वस्तुओ से बच्चे का रागात्मक सम्बध स्थापित करना आवश्यक है।

यदि आप बालक का शारीरिक और मानसिक विकास करना चाहते हैं तो उसे स्वतत्रता दीजिए। हो सकता है कि यह स्वतत्रता पाकर अपने वस्त्र या शरीर को गन्दा कर ले या कोई गल्ती कर जाय पर आप इसकी चिन्ता मत कीजिए। गन्दगी दूर कर दी जायगी और गल्ती का भी फिर सुधार हो जायेगा पर बच्चे को स्वतत्रता देकर जो हानि पहुचाई जायगी उसकी क्षति-पूर्त्ति फिर असम्भव ह।

बच्चा जब लुढ़क-लुढ़क कर चलना सीख जाता ह तो हमारे साम दो-एक नये प्रश्न उठ खडे होते ह। सबसे बडा प्रश्न तो स्वय बच्चे की सुरक्षा का होता ह और दूसरा प्रश्न वस्तुओ की सुरक्षा का। बच्चा कहीं ऐसे स्थान पर जा सकता ह जहाँ से गिरकर चोट लगने की आशका हो सकती ह अथवा वह स्वय किसी वस्तु को खीच कर अपने ऊपर गिरा सकता ह। बच्चा टूटने-फूटनेवाली वस्तुओ को तोड सकता ह। मिट्टी के बतन अथवा प्याला तश्तरियाँ (चीनी मिट्टी की बनी हुइ) सरलतापूर्वक बच्चो के हाथ से टूट सकती ह। अत बच्चो को खेलने और चलने-फिरने का पूण अवसर देने के लिए सवप्रथम कमरे को ठीक करना होगा। कमरा ठीक करने से हमारा अभिप्राय कमरे की वस्तुओ को ठीक से रखना और टूटने फूटनेवाली अथवा बच्चे को हानि पहुँचाने वाली वस्तुओ को उसकी पहुँच से दूर रखने से है। बच्चे को पूण स्वतत्रता ऐसी ही अवस्था में दी जा सकती है। बच्चे को क्षति पहुँचानेवाली वस्तुओ में आग सबसे अधिक खतरनाक है। आग की लाल-लाल लपटें बच्चे को अपनी ओर आकर्षित करती ह। बच्चा तेजी से उस ओर लपकता है और चाहता ह कि उसे दोनों हाथो से पकड ले। किन्तु यह विश्वास रखिये कि वह एक बार जल जाने के पश्चात् फिर नही छुएगा। पर कौन ऐसा मनुष्य ह जो इस प्रकार बच्चे को आग से डराना चाहेगा। अत सवप्रथम तो हमें आग को इस प्रकार रखना चाहिए कि बच्चा वहाँ तक पहुँच न पावे किन्तु हमारे देश में भोजन पकाने की जो विधि ह उसमें यह सम्भव नही ह। अत विवश होकर हमें बच्चे को ही उससे दूर रखने का प्रयास करना चाहिए।

बच्चे को अधिक दूरी पर रखने के लिए कोई ठोस उपाय नहीं है, आप केवल इतना कर सकते हैं कि माता जिस समय भोजन बना रही हो उस समय बच्चे को रसोईघर में भरसक न जाने दें। किन्तु यह भी असम्भव ही है। विवश होकर हमें केवल एक उपाय यही करना पड़ता है कि चूल्हे को उस दिशा की ओर रखें कि बच्चा का सामना न पड़े। बच्चे को उधर आकर्षित न होने दें। कुछ माताओं ने यह भी प्रयोग किया है कि वे बच्चे का हाथ चूल्हे के उतने निकट तक ले जाती हैं जहाँ से काफी गर्मी महसूस होने लगती है। ठीक उसी समय 'उइ' या 'ही' कहकर वे हाथ खींच लेती हैं। बस बच्चा समझ जाता है कि चूल्हे में अथवा आग में क्या रक्खा है और उसके पास हाथ ले जाने से क्या कष्ट उठाना पड़ेगा। ऐसी माताओं को अपने प्रयोगों में आशातीत सफलता मिली है। बच्चे को क्षति पहुँचाने वाली वस्तु दियासलाई भी है। बहुधा लोग दियासलाई जला जलाकर बच्चों को बहलाते हैं। माना कि रोता हुआ बच्चा इससे चुप हो जायगा पर इस क्रिया का कुप्रभाव उस पर बहुत भयानक पड़ेगा। और जब ही उसे दियासलाई मिल जायेगी वह उसे जला लेगा जिससे जलजाने की आशंका है। अतः बच्चों के सम्मुख इस प्रकार दियासलाई का खेल नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्ध में कुछ बहुत ही सफल प्रयोग किये गये हैं जिनमें एक विशेष उल्लेखनीय यह है कि बालक से दियासलाई मँगवा कर उसी से खोलने को कहा गया। बालक ने उसे अपने हाथों से खोला। फिर उसी के सामने एक-आध बार जलाकर उससे भी जलाने को कहा गया। जलाते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया कि वह ठीक से जलावे। इसी प्रकार दो-चार दिन के भीतर ही बच्चे को ठीक से दिया सलाई जलाना सिखा दिया गया। इससे दो लाभ हुए—एक तो बच्चे को दियासलाई से कोई विशेष आकर्षण नहीं रह गया, दूसरे वह उसका उचित उपयोग जान गया। वह यह जान गया कि किस प्रकार दिया सलाई जलाई जाती है जिससे हाथ न जलने पावे। फिर भी आवश्यक यही है कि बच्चों को ऐसी वस्तुओं से दूर रक्खा जाय। इसी प्रकार कुछ अन्य विस्फोटक पदार्थों को भी बच्चे की पहुँच से दूर रक्खा जाए। कभी-कभी बिजली भी बच्चों को हानि पहुँचा जाती है। इसके लिए उसके

सरल साधन यह है कि स्विच काफी ऊँचाई पर 'फिट' की गई हो। चाकू कैंची से भी बच्चों की रक्षा आवश्यक है। अत इन्हें भी उनकी पहुँच से दूर रक्खा जाय।

उपरोक्त वस्तुओं से बच्चों को बचाने के लिए लोगा ने एक महा मन्त्र रट लिया है जिसका प्रयोग ठीक उसी समय करते हैं जब बच्चा उन्हें छूने को उत्सुक रहता है। उधर बच्चा ललचकर हाथ बढ़ाता है और इधर उनके मुह से निकलता है—"नहीं", "खबरदार"। बस उनका इतना कहना ही बच्चे की उत्सुकता को बहुत अधिक बढ़ाने में काफी है। बच्चा फौरन तेजी से बढेगा। आप बल का प्रयोग करेंगे। वह भी बल लगायेगा रोयेगा, चिल्लायेगा। इस प्रकार आपने उसकी उत्सुकता इतनी अधिक बढ़ा दी कि वह बराबर उन्ही वस्तुओ की ओर झुकना चाहेगा। आप कब तक मना करेंगे, कहाँ तक बच्चे का पीछा करेंगे। अत उसको मनाकर उसकी उत्सुकता मत बढ़ाइये। बहुत लापरवाही से उसे सँभालिए जसे आप कोई विरोध नहीं कर रहे है। कोई दूसरी चमत्कारयुक्त वस्तु देकर उसे उधर आकर्षित कीजिए। इस प्रकार आप बहुत शीघ्र उसके मनोभावों पर विजय पा जायेंगे। आप किसी प्रकार भी उसे बहला सकते हैं पर मना मत कीजिए। आप अवश्य सफल होंगे।

बच्चे के सम्मुख एक अन्य खतरा है सीढ़ी। सीढ़ी पर से लुढक पडते है। आपने उन्हें अकेले छोड़ा नही कि वे मनमाने ढग से सीढी पर से उतरने लगते हैं और परिणाम यह होता है कि वे सीढ़ी पर से लुढ़क पडते है। इसके लिए सबसे बढ़िया साधन यही है कि सीढी पर दर्वाजा लगाकर बन्द करने की व्यवस्था की जाय। यदि यह किसी प्रकार भी सम्भव न हो तो एकमात्र साधन बच्चे की रखवाली ही है। दूसरा कोई साधन नहीं है। जब बच्चा कुछ बडा हो जाय तो उसे सीढ़ी पर चढ़ने-उतरने का ढग सिखला दिया जाय। इस प्रकार इस भय से मुक्ति मिल सकती है।

बालको के सम्मुख एक दूसरी खतरनाक वस्तु है पशु। पालतू पशु भी बच्चे को क्षति पहुँचा सकते हैं यदि वह उन्हें छेड़ता है या उनके साथ अनुचित ढग से पेश आता है। अत पशुओ से बालका की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि बालकों को यह सिखला दिया जाय कि उनसे छेड

छाड न करें अथवा उनको किस प्रकार छुयें। सुन्दर तो यह है कि बच्चों को उन से दूर ही रक्खा जाय। कुत्ते बिल्ली आदि पालतू पशु पर व बच्चों को क्षति नहीं पहुंचाते पर इनसे भी बुरी तरह उलझनेवाला बालक खतरा मोल ले सकता है। बैल, गाय आदि तो अनजाने में भी बच्चों को चोट पहुँचा सकते है। अत बच्चों को इनसे दूर ही रखा जाय।

भय—भय बच्चे में पहले से ही विद्यमान नहीं रहता है। यह माता या अन्य लोगो द्वारा सिखलाया या दिलाया जाता है। अत हमें सवंदा यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा में भय का संचार न किया जाय। उन्हें किसी अनोखी वस्तु का नाम लेकर जैसे "भूत आया", "हौवा" आदि कहकर डराना सवथा हानिप्रद होता है। माताएँ रोते हुए बच्चे को चुप कराने का यह अच्छा साधन समझती हैं। "खबरदार", "होशियार हो जाओ", "बचो" आदि कहकर हम उनके आत्मविश्वास का गला तो घोटते ही है साथ ही उन्हें यह भी सोचने का अवसर देते है कि संसार भय की वस्तु है। भयातुर बच्चे ही बहुधा दुर्घटना के शिकार होते हैं। अत उन्हें कभी भी भयभीत नहीं करना चाहिए। यदि किसी प्रकार एक बार वे डर भी जाते हैं तो उनके डर को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। तभी बच्चे में साहस आ सकता है।

दुर्घटना—यदि बच्चा गिर जाता है या उसे कहीं चोट लग जाती है तो आप अपनी घबराहट उस पर मत प्रकट कीजिए। उसे प्रोत्साहित कीजिए और मरहम पट्टी करते समय उसे बहलाने का प्रयास कीजिए। आपकी घबराहट बच्चे को और भी घबरा देगी। भारी चोट लगने पर बच्चे को सावधानी से सँभालना चाहिए। हल्की चोटों पर भी उतनी ही सावधानी चाहिए और बच्चा को प्रोत्साहित होने से बचाना अपना परम कर्तव्य समझना चाहिए।

खिलौना—इस अवस्था में बच्चा खिलौने को ही अपना सबसे बड़ा साथी समझता है। अत उसके खिलौनों की ओर आपको स्पष्ट ध्यान देना होगा। खिलौने मँहगे न हो क्योंकि बच्चा तोड़-फोड़ अवश्य करेगा। साधारण खिलौने ही इस आयु में देने चाहिए। रबर या लकड़ी के हल्के खिलौने

अधिक लाभप्रद होते हैं। आजकल अनेक प्रकार के नये-नये सस्ते खिलौने आते ह जिससे बच्चा खेल सकता ह। क्या आप खिलौनो को एकत्रित करना भी चाहते ह ? अत टिन का एक बक्स भी ले देना चाहिए। खिलौनो में आप भी दिलचस्पी लीजिए, तभी बच्चा खिलौना की ओर अधिक झुकेगा और आपकी अनुपस्थिति में भी उनसे खलेगा।

वस्त्र—बच्चों का वस्त्र भी उनके उपयुक्त होना चाहिए। बच्चो को खलने की स्वतन्त्रता देने का अथ ही है उन्हे गदा होने की स्वतन्त्रता देना। अत बच्चे का वस्त्र सफेद रग का तो होना ही नहीं चाहिए। नीले रग का कपड़ा उनके लिए सबसे सुन्दर होता है। दूसरे गाढ़े रग भी अच्छे होंगे। कपड़े की बनावट (सिलाई) पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बच्चों के कपडों में अधिक बटन लगवाने की आवश्यकता नहीं है। कपडे ऐसे हों जो सरलतापूर्वक पहनाय और उतारे जा सकें। वे कुछ ढीले हो जिससे इस काय में सुविधा हो। खलन के लिए कुछ चुस्त कपड़े पहनाये जा सकते ह। पाजामा और हाफपैन्ट काफी अच्छे होते ह।

समय निर्धारण—मनुष्य के जीवन में समय निर्धारण का बहुत बड़ा महत्व होता ह। इसका श्रीगणेश बाल्यकाल में ही हो जाना सुन्दर ह। वास्तविकता तो यह ह कि यदि बाल्य-काल में इसकी उपेक्षा की गई तो फिर भविष्य में सुधार असम्भव ह। बचपन में प्रत्यक काय का एक लिखित समय निर्धारित कर देना आगे चलकर लाभप्रद सिद्ध होता है। प्रात काल ही बच्चे को शौच की आदत डाल देनेवाली माताओ को काफी सुविधाएँ मिल जाती ह। बच्चे के खाने-पीने, खेलने, नहाने, सोने आदि का भी समय निश्चित कर देना चाहिए। जब बच्चा इस समय की पाबन्दी का आदी हो जाता है तो वह प्रसन्नता का अनुभव करता ह और माता को भी बच्चे द्वारा किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न होने के कारण प्रसन्नता होती है। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक ह कि बच्चा फिर अपने निश्चित समय को नहीं छोड़ना चाहता और माता यदि इसमें किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित करती ह तो वह रोकर विरोध करता ह। यदि दो चार दिन तक इसी प्रकार व्यवधान चलता रहा तो फिर पूर्व निश्चित पाबन्दी को अपनाने में तो वह और भी जोरदार विरोध करेगा।

विश्राम और शयन—बच्चा जब तक जागता रहता है तब तक वह हाथ-पाँव हिलाता रहता है। अत वह थकान महसूस करता है। इस थकान को दूर करने के लिए विश्राम आवश्यक है। प्रौढ़ व्यक्ति अनेक प्रकार से विश्राम कर सकता है पर बालक का विश्राम सोना है। बच्चे के जीवन में सोने का भी काफी महत्व है। सोने के पूर्व उसे शान्तिपूर्वक कोई हल्का खेल खेलने दीजिए जिसमें उसे अधिक दौड़ना पड़े। बच्चा दिन भर का यों ही थका रहता है, उसे अधिक थकाना ठीक नहीं है। आयु के आधार पर बच्चे के सोने के घण्टों के सम्बन्ध में निम्न तालिका ध्यान देने योग्य है —

बालक की आयु	सोने के घण्टे	
वर्ष	घण्टा	मिनट
१	१४	४५
२	१३	१५
३	१२	४५
४	१२	५
५	११	४०
६	११	१५
७	११	५
८	१०	५०

हमने पीछे थकान का उल्लेख किया था। बच्चे के लिए खेल आवश्यक है। खेल से थकान हो यह भी स्वाभाविक है। आवश्यकता से अधिक थकान बच्चे को शरारती बना देती है यह भी सत्य है। अत हमें सर्वदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा कभी भी आवश्यकता से अधिक न थकने पावे। अधिक दौड़ना, अधिक कूदना आदि ही अधिक थकान के कारण हैं। अत जब बच्चा अधिक चिल्लाये तो हमें यह नहीं समझना चाहिए कि वह शरारतवश रो रहा है परन्तु यह समझना चाहिए कि वह बहुत थका भी हो सकता है।

सामान्य व्यवस्था—बच्चे के लिए कुछ सामान्य व्यवस्थाओं का निर्धारण कर देना भी आवश्यक है। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया है

बच्चे का अधिक रोना भी हमारी एक समस्या है। इसके लिए अन्य उपायों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण उपाय यह है कि बच्चे को पर्याप्त स्वतन्त्रता दीजिए और साथ ही उसे पर्याप्त विश्राम दीजिए। फिर देखिए कि रोने के अवसर बहुत कम आवेंगे। बहुधा बात-बात पर लोग 'मत' या 'नही' का प्रयोग करते हैं। आपकी घड़ी खाट पर पड़ी है। बच्चा उसे लेने को लपकता है। आप झट जोर से कहते हैं 'नहीं'। फिर क्या पूछना? बच्चा और जोर से बढ़ेगा। ऐसे अवसर पर उसे किसी दूसरी वस्तु से बहलाइए। साथ ही कोशिश कीजिए कि ऐसे अवसर ही न आवें। इस प्रकार की वस्तुएं बच्चा से दूर रखिए। यदि किसी प्रकार 'मत' या 'नहीं' का प्रयोग कर ही दिया तो उससे फिर हटिये मत। मेरा अभिप्राय यह नही कि बच्चे की भाँति आप भी जिद्द पकड़ लीजिए। आप अपनी बात पर दृढ़ रहिए पर बच्चे को इसका ज्ञान न हो।

बहुधा यह देखा जाता है कि माता पिता बच्चे को तर्क द्वारा कोई बात मनवाना चाहते हैं। भला यह तर्क की अवस्था है? घड़ी मत छुओ क्योंकि यह टूट जायेगी, पैसे लगेंगे तब बनेगी, आदि दलीलें बच्चे के लिए कोई अर्थ नही रखतीं। इसी प्रकार शारीरिक दण्ड भी बच्चे के लिए कोई महत्व नही रखता। इस आयु के बच्चे के लिए ये सारी बातें बेकार है। मान लीजिए बच्चे ने प्लेट तोड़ दी। बेचारा प्लेट की पटकन से स्वयं घबराया हुआ है। आप अपनी फटकार से उसे और अधिक मत घबराइये। उसने तो अभी-अभी सीखा है कि पटकने से प्लेट टूट जाती है। बहुत सम्भव है कि भविष्य में वह सतर्क रहेगा और ऐसे अवसर नही आने देगा।

विनाशात्मक प्रवृत्तियाँ—बच्चे में दो प्रवृत्तियाँ रचनात्मक और विनाशात्मक काफी समय तक बनी रहती है। वह मिट्टी के घरौंदे बड़े प्यार से बनाता है और फिर एक ही लात के धक्के में उन्हें तोड़ देता है। इन दोनों प्रवृत्तियों के निवहण को उचित अवसर देना चाहिए। बहुत सी ऐसी वस्तुएं हैं जिनसे बच्चा अपनी इन प्रवृत्तियों का निवहण कर सकता है। उदाहरणार्थ उसे अखबार दे दीजिए। वह उसे टुकड़े-टुकड़े करके अपनी विनाशात्मक प्रवृत्ति की तृप्ति करेगा। फिर उन्हीं टुकड़ों

को वह इकट्ठा करेगा। अब उसने रचनात्मक प्रवृत्ति का भी निर्वाह कर लिया। यह ध्यान रखिए कि वह अखबार फाड़ते-फाड़ते आपकी पुस्तक तक न बढ़ जाय नहीं तो उसके लिए अखबार और किताब बराबर है। यदि उसकी उपरोक्त दोनों प्रवृत्तियों को विशेषतया विनाशात्मक प्रवृत्ति को बलपूर्वक रोका गया तो बालक प्रतिक्रिया स्वरूप बड़ा भीषण प्रतिफल प्रदर्शित करेगा। अतः हमें इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

सारांश—जैसा कि विवरण में स्पष्ट है चार मुख्य घुटन के बल चलने वाले बालक से लेकर लड़खड़ाकर पैरों के बल चलनेवाले बालक की देख रेख के निमित्त दिये गये हैं। यदि माता पिता अपने इस आयु के शिशु से प्रसन्न रहना चाहते हैं और साथ ही बच्चे को भी प्रसन्न रखना चाहते हैं तो उन्हें चाहिये कि उससे अधिक आशा न करें। उसके शारीरिक या मानसिक विकास में बहुत तीव्र गति की आशा न करें। यह न चाहें कि उनका बच्चा बहुत शीघ्र सफाई करने लगे, बोलने लगे उचित-अनुचित का भी ध्यान रखने लगे। यदि वे ऐसा सोचेंगे और चाहेंगे तो उन्हें निराशा होगी और उसकी प्रतिक्रिया बच्चे पर भी होगी। बच्चा उचित-अनुचित अच्छाई-बुराई का कोई विचार नहीं समझ सकता। उसके लिए सब समान है। वह क्या सही कर रहा है और क्या गलत, इसका कोई विचार नहीं रहता। हमारी शिक्षाएँ भी कोई अर्थ नहीं रखतीं। बहुत से माता पिता दिन भर बच्चों को शिक्षा देने के फेर में पड़े रहते हैं। वे चाहते हैं कि इसी आयु में उसे 'वेल ब्यायड' बना दें। इसके लिए वे उसे प्रताड़ित करते हैं मारते-पीटते हैं। इसका परिणाम ठीक उल्टा होता है। वह जो कुछ करना चाहता है करना चाहता है वह भी नहीं कर पाता। माता पिता दबाव डालकर उसे कुछ सिखा दिया जाय पर यह तो और भी बुरा होता है। वह किसी प्रकार की शिक्षा या न्याय की वस्तु समान लगता है। सोचता है चारों ओर ज्यादती और अन्याय है। वह सर्वदा भयभीत रहता है। बाल्य में, यौवन में हर समय उस इस दबाव का भय बना रहता है। अतः दबाव द्वारा इस आयु में बच्चे को कुछ भी सिखलाना उसके भावी विकास में बाधा पहुँचाना है। सुन्दरता से

ह कि आप उसके कार्यों में (स्वाभाविक कार्यों में) उचित सहयोग दें। वह जो कुछ भी करता ह निर्लिप्त भाव से और निर्लिप्त भाव से किये गये बच्चे के ये काय उचित-अनुचित की कसौटी पर नही कसे जा सकते। ये वे काय ह जिनसे बच्चा अपना शारीरिक और मानसिक विकास करना चाहता ह।

बच्चा में स्वार्थ की भावना की आलोचना लोग बहुत करते ह। कोई वस्तु दे दीजिए, फिर वह नही चाहगा कि किसी दूसरे बच्चे को उसमें से हिस्सा दिया जाय। यह प्रवृत्ति स्वार्थ की नही वरन् बच्चे की उस भावना का द्योतक है जो सयम और प्रभुत्व के सम्मिश्रण स बनती ह। कुछ लोग इसके लिए बच्चों को डाँटते-फटकारते ह। पर यह सवथा अनुचित ह। उदाहरण द्वारा आप भले इसमें सुधार ला दें पर शिक्षा द्वारा आप कुछ नही कर सकते।

अध्याय ६

दो से पाँच वर्ष

नवजात शिशु के जीवन के प्रथम पाँच वर्ष का समय बड़ महत्व का है। इस जीवन में अनेकान्य समस्याएँ आती हैं जिनका समाधान शिशु को करना पड़ता है। इसके अनुसार इस पंचवर्षीय जीवन को तीन अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम शैशव, दूसरे लुढ़क कर चलने वाली अवस्था और तीसरी अपने पैरों से चलने की अवस्था। बच्चा शैशव काल में दौड़ने-फिरने के पहिले ही चलना और बोलना जान जाता है। उसमें नव बुद्धि तथा शक्ति का संचार भी होना आरम्भ हो जाता है। यह संचार सम्पूर्ण शैशव में चलता है किन्तु कभी कम कभी अधिक। तीन वर्ष की आयु का बच्चा प्रायः बोलना जान जाता है। वह तेजी से दौड़ भी सकता है। बात भी कर सकता है और किसी वस्तु के कारण और प्रतिफल पर थोड़ा-बहुत विचार भी कर लेता है। दुःख-सुख, हर्ष-विषाद क्रोध-आनन्द आदि मनोभावों के ज्ञान की शक्ति भी थोड़ी मात्रा में उसमें आ जाती है। किसी को अकस्मात् रोता देख वह रो पड़ता है, किसी के चिल्ला देने पर वह घबड़ा जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि इस आयु तक वह काफी चीजों की परख करने लगता है।

यदि बच्चे का पालन आनन्द और प्रसन्न वातावरण में हुआ है तो इसका उस के स्वभाव पर पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा। वह आत्मविश्वासी प्रसन्नचित्त मिलनसार आदि गुणों से सम्पन्न होगा। वह दूसरों के सम्मान का भी ध्यान रखने वाला होगा। उसमें ये सन्निहित गुण अभिवृद्धि के साधक रहेंगे। बच्चे अपनी पंचवर्षीय प्रथमावस्था में किसी अन्न वस्तु से तादात्म्य स्थापित नहीं करना चाहते। उन्हें बिस्कुट आदि अन्यान्य चीजों से अधिक रुचि रहती है। वे किसी अन्य सामान के ढेर को भी इधर उधर करके बिखरना चाहेंगे। इससे उनका स्वयं कोई लाभ भले हो न हो परन्तु

व करना चाहेंगे। दूसरी अवस्था में उनकी प्रवृत्ति लोगों और समाज की ओर झुकती है। वे क्रीडास्थल में अन्य बच्चो की क्रीडा को ध्यानपूवक देखते ह पर पहले उनके साथ खेलने में भय का अनुभव करते ह फिर भी उनके साथ खेलने में समुत्सुक रहते ह। वे अपने कार्यों और सेवाओं से पिता, चाचा, भाई बहनो आदि के हृदयो में अपने प्रति केवल श्रद्धा उपार्जित करना ही नहीं चाहते हैं अपितु अपना हित भी इसी में देखते ह। वे अपने को सामाजिक प्राणी समझते हैं और समाज की सदस्यता के लिए सदा तत्पर रहते हैं। बच्चा अपनी इस तृतीयावस्था में समाज में प्रविष्ट हो बहुत कुछ सीखना चाहता है जिसमें माता-पिता उसकी बहुत अधिक अश में सहायता कर सकते हैं।

सामाजिक सहवास—बच्चे को समाज में लाने के लिए तथा अनेक विषयों की शिक्षा देने के लिए समय चाहिए। यह कार्य यदि चाहा जाय कि एक ही दिन में हो जाय तो असम्भव है। यह धीरे धीरे हो सकेगा। बच्चे को उसके समवयस्क बच्चे के साथ खेलने देना चाहिए। वह जितनी बातें अपन हमजोलियो से जितनी शीघ्रता से सीख सकेगा उतनी बातें अन्य सगति में नहीं सीख सकता। हाँ यह बात अवश्य है कि बच्चे सर्वप्रथम अपने समवयस्कों को उसी प्रकार देखते हैं जैसे कुत्तो के झुण्ड नवागन्तुक कुत्ते को और वे खिलौने के लिए ठीक उसी भाँति झगड उठते ह जैसे हड्डी के लिए कुत्ते। किन्तु यह बात सदव ही नही रहती। वे धीरे धीरे बदल जाते हैं और कुछ ही दिनो पश्चात् हमजोलियो में अपने को घुला-मिला लेते हैं।

शत्रुता और भीरुता—विनम्रतापूवक शत्रुता का प्रथमारम्भ बच्चे में प्रयोग का एक प्रकार ह। हम इसे अपनी इच्छानुसार अस्वीकार कर सकते ह पर जब कोई डॉक्टर या अनिच्छा से कराना चाहेगा तो हम उसे करना नहीं चाहगे। हम स्वत शत्रुता दिग्दशन के लिए तत्पर हो जायेंगे। अत यह भावना जितन अश में बच्चों में वर्तमान है उससे कम अश में हममें नहीं ह। किन्तु हम उस अश को स्वेच्छा से समाप्त करने की भी क्षमता रखते है। कुछ लोगो की राय ह कि प्रारम्भिक काल की शत्रुता की भावना सामाजिक व्यवहार में अरुचि या अत्यधिक भीरुता से कहीं अच्छी होती ह।

फिर भी हमें यह भावना रोकनी चाहिए। इसे रोकने की सबसे महत्व-पूर्ण विधि है बच्चे की स्वेच्छा। इसका निराकरण जितनी सफलता से बच्चा स्वयं कर सकता है सम्भवतः दूसरा उसमें अधिक सफल नहीं हो सकेगा। भयातुर बालक पर दबाव नहीं लागू हो सकता और न वह दबाव से अपनी इच्छा के विरुद्ध काम ही कर सकेंगे। यदि उस बच्चे की स्कूल की इच्छा नहीं है तो क्या मजाल कि आप बलपूर्वक डाँट-धमकाकर उसे स्कूल को भेज दें। इस डाँट-फटकार का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ऐसे अवसर पर दूसरे अस्त्र का आश्रय लेना चाहिए। एक शान्तिप्रिय बालक ढूँढ़ना चाहिए जो आयु तथा बुद्धि दोनों में इस बच्चे से बड़ा हो और वह इसका साथी बन सके। यह साथी बच्चे के इस दुर्गुण को निर्मूल कर सकता है जबकि हमारी प्रताड़ना उसे और विकसित कर सकती है। वह आयु में बड़ा होने के कारण बच्चे को सिखला भी सकेगा और उसकी सीख मानने में बच्चे को असुविधा भी न होगी और न वह अस्वीकार ही करेगा। साथ ही आप को भी उसकी उदासीनता और भीरुता की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए तथा उसे किसी संगति में जाने के लिए भी विवश नहीं करना चाहिए। धीरे-धीरे वह सब कुछ कर सकता है, जैसे किसी अहिन्दीभाषी अथवा शरणार्थी शिशु को विद्यालय में बच्चों के साथ उठने-बैठने पढ़ने लिखने, बोलने, बात करने आदि में पर्याप्त कठिनाई उठानी पड़ती है पर धीरे धीरे सब साध लेता है। इसका कारण यह होता है कि उसको ऐसी संगति नहीं मिली होती है। उसी प्रकार वह बच्चा भी धीरे धीरे अपनी प्रवृत्ति को बदल देगा और संगति से तादात्म्य स्थापित कर लेगा।

शिष्टता—बच्चों में शिष्टता का अंश होना बहुत ही आवश्यक है। इसका सूत्रपात उनमें उसी समय किया जा सकता है जब कि वे दूसरे लोगों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। उनके जीवन की यही अवस्था है जब कि उनमें अच्छी आदतों और मानवीय विशिष्ट गुणों को समाहित किया जा सकता है। अच्छे गुणों से हमारा अभिप्राय केवल शिष्ट व्यवहार से ही नहीं है जिसमें केवल 'कृपया' तथा 'धन्यवाद' कह देने से ही काम चल जाता है बल्कि उन सभी गुणों से है जिनकी आवश्यकता बच्चे को बात करने में होती है। दूसरों से बात करने में उनकी इच्छा और अधिकारों का ध्यान रखना

पड़ता है। यही ऐसी बात न कह दी जाय जो दूसरे के पद के लिए अशिष्ट सिद्ध हो ऐसा होने पर सारी विनम्रता पर तुषारापात हो जाता ह। अत बच्चे को शिष्ट होने के साथ-साथ बात करने के अन्याय ढगो का ज्ञान होना चाहिए। इस आवश्यक शिष्टता तथा रीत्यानुसार विनम्रता की शिक्षा दते समय माता-पिता को सब प्रथम अपने ऊपर एक दृष्टिपात करना चाहिए। यदि शिक्षा दनावाला ही अशिष्ट और उद्दण्ड ह तो उसका प्रभाव बच्चे पर शताश भी नही पड सकता। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' का कथन नही चरिताथ होना चाहिए। उदाहरणाथ यदि आपके बाजे में सामने की ओर रेलिंग नही ह और बच्चे के गिर जाने का भय है तो आपकी उस समय की शिक्षा बच्चे पर कुछ काम नही कर सकती जबकि आप स्वय यहाँ बठा करते है। बच्चे को यहाँ जाने स रोकने के लिए आपको स्वय भी रुकना होगा या वहाँ उस समय जाना होगा जबकि बालक घर में अनुपस्थित हो या वह देख नही सके।

बच्चो के साथ सदव शिष्टता और विनम्रता से पेश आना चाहिये। बच्चों पर बातो या शब्द का जितना प्रभाव पडता है उतना और किसी चीज का नहीं। घर में विनोद और हास्य का वातावरण समुपस्थित करना बच्चे के हेतु लाभदायक होता ह। उसकी मनोवृत्ति उसी रग में रँग जाती हैं और उसके बातचीत करने का ढग भी सुव्यवस्थित हो जाता है। यदि बच्चा विनोदशील ह तो बातचीत करने में भी पटु हो सकता ह और यह केवल वातावरण का प्रभाव मात्र ही होता ह। कुछ एस भी बच्चे देखे जाते ह जो बातचीत करने का अच्छा ज्ञान रखते हुए भी उदण्ड होते ह। यह केवल उनकी शिक्षा का अभाव ह। बच्चो का एक ऐसा भी विभाग देखा जाता है जो शिष्ट और विनम्र होते हुए भी बातचीत करने के ढगों से अपरिचित होते हैं। यह उनके वातावरण का दोष ह। उन्हें विनोदमयी सगति का सम्पक नही मिल सका होता ह। अस्तु उन्ह शिष्ट तथा सुसभ्य बनाने के साथ-साथ बातचीत करने की विधियो का भी शिक्षण आवश्यक होता ह। प्राय ये बच्चे, जिन्हे कृपया व धन्यवाद' शब्द नए रूप में सिखलाए जाते ह, इस ओर अधिक समुत्सुक रहते ह। इन शब्दो का प्रयोग अपने सम्भाषण में

करने में आनन्द का अनुभव करते हैं। सिखाई हुई चीज को प्रायः बच्चे भूल जाया करते हैं किन्तु फिर उनका सस्मरण कराने पर वे पश्चाताप करते हैं। जैसे यदि आपने बच्चे को अतिथियों के आने पर प्रणाम करना सिखाया है तो इसका प्रयोग उचित अवसरों पर करने में व प्रसन्न होते हैं। अकस्मात् वे कभी-कभी यह शिक्षा भूल भी जाया करते हैं। एसी दशा में आप को अतिथियों के सामने ही उनकी इस त्रुटि को नहीं स्पष्ट करना चाहिये बल्कि इसका स्पष्टीकरण अतिथियों के चले जाने पर करना बच्चे के लिए श्रेयस्कर होता है। वह अपनी भूल स्वीकार करके भविष्य के लिए सजग हो जाता है।

व्यावहारिक ज्ञान भी बच्चों के शिष्टाचार में सहायक होता है किसी अतिथि के आने पर उन्हें क्या करना चाहिये, उन्हें बैठाने, जलपान कराने कुशलक्षेम पूछने में किस विधि से काम लेना चाहिये इसका अनुभव तो कुछ अंश में बच्चे अपने वातावरण में ही कर लते हैं। किन्तु उन्हें इसका प्रायोगिक ज्ञान कराना भी आवश्यक होता है। यह बच्चे को उसके समवयस्कों के साथ ही सीखने देना लाभकर होता है। समागत अतिथि की आवभगत और उसकी सुश्रुषा करने का ढग उसे अपने मित्र पर ही सीखने देना चाहिए। इस प्रकार अपने व्यावहारिक मामलों में वह परिपक्व हो जाता है। फिर अपने गुरुजनों का भी स्वागत बड़े दक्ष ढग से कर सकता है। कुछ बच्चे एसे देखे जाते हैं जिन्हें शिष्टाचार का ज्ञान तो रहता है किन्तु व्याव हारिक ज्ञान से वे बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं। अतिथि के 'एक गिलास जल माँगने पर लाते तो अवश्य हैं किन्तु अव्यावहारिक ढग पर गिलास में अपना हाथ डालकर कमरे की फर्श पर पानी गिराते हैं। किसी तरह वे पास पहुँच सकेंगे जिसे देखकर रहने पर भी करमाना [illegible] न [illegible]। इसलिए बच्चों को व्यावहारिक शिक्षा प्रारम्भिक अवस्था में ही देनी चाहिये।

प्रायः बच्चा [illegible] पाकर प्रसन्न होता है और उसी [illegible] में उद्वेलित हो जाता है। उस दशा में यदि कर [illegible] है [illegible] हैं, पर अपने आनन्द में निमग्न हो जाता है और [illegible] का

प्रयोग भूल जाता है तो वह व्यावहारिक मामले में पटु कहा जा सकता है। इसके विपरीत यदि अन्य बच्चा केवल 'धन्यवाद' कहकर ही शान्त हो जाता है तो निस्सन्देह यह कहा जा सकेगा कि पहला बच्चा दूसरे से पटु है। माता पिता के क्रिया-कलापो का भी प्रभाव बच्चा पर पड़ता है। जैसे यदि बच्चा दूध पीते समय कुछ पीता है और कुछ अपने कपड़े पर गिरा लेता है और उस समय उसे डाँटने के स्थान पर आप यदि यह कहते हैं कि 'कपड़ा खराब हो गया' तो वह शीघ्र ही बोल उठेगा 'हाँ, ओह'। सम्भवतः भविष्य में ऐसा न करने का दृढ़ संकल्प भी कर लेगा। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि बच्चे अपनी त्रुटियों को माता पिता से छिपाना चाहते हैं। एकान्त में किसी असावधानी से हाथ जल जाने पर वह किसी से बताना भी नही चाहते। माता को इसका पता लगने पर उन्हें प्रताडना की आशंका रहती है। किन्तु ऐसे स्थलो पर उन्हें प्रताडित करने के बजाय उनके कष्ट पर क्षोभ प्रगट किया जाय तो वे अधिक प्रभावित हो सकते हैं।

किसी अतिथि या गुरुजन के आने पर अपने स्थान से उठकर खड़ा हो जाना, प्रणाम करना, उसके बैठने के लिए स्थान देना आदि व्यवहार की प्रारम्भिक शिक्षायें हैं। कभी-कभी बच्चे को सम्भाषण तथा शिष्टाचार के विधि-विधानो का भी दिग्दर्शन कराना चाहिए। इससे उन पर प्रभाव पड़ता है। किन्तु यहाँ यह देखना चाहिए कि आप बच्चे को ऐसी शिक्षा न देने लगें कि वह उसके मस्तिष्क के बाहर की वस्तु हो जाय, व्यावहारिक स्तर से उठकर नैतिक स्तर पर पहुँच जाय। ऐसी बातें बच्चा जब समझ ही नही सकेगा तो उसका आचरण कैसे कर सकेगा।

सहयोगिता अथवा आज्ञाकारिता—बच्चो में सहयोगिता और आज्ञाकारिता में से कौन गुण अपनाना चाहिए यह विवादग्रस्त विषय है। आज से कुछ समय पहले लोगो का ध्यान आज्ञाकारिता की ओर विशेष था। वे बच्चों में इस गुण को प्रधानता देते थे। इसके सामने अन्य गुण गौण माने जाते हैं। वे इस पक्ष में थे कि बडो की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। पर यह बात आज के युग में मूर्खतापूर्ण समझी जाती है। दूसरी ओर यह बात है कि वह परिवार कलहपूर्ण होगा जहाँ कोई बच्चा किसी

की आज्ञा नहीं मानेगा और जो जी में आवेगा वही करेगा। अपनी अपनी डफली अपना-अपना राग अलापने से पारिवारिक सुख समाप्त हो जाता है। अतः हमें ऐसा मार्ग पकड़ना चाहिए जो परिवार के लिए कल्याणप्रद हो। बच्चों को कुछ आवश्यक नियम बताना चाहिए। उन्हें नियमित बनने की आदत डालनी चाहिए और साथ ही ऐसे गुणों का सिखाना चाहिए जिनमें दूसरों का भी लाभ सन्निहित हो। इन बातों को बच्चे बहुत शीघ्र ही सीख जाते हैं बशर्ते कि उन पर किसी प्रकार का दबाव न डाला जाय माता-पिता के व्यावहारिक गुणों का अनुसरण बच्चे बहुत शीघ्र कर लेते हैं जब उन पर दबाव डाला जाता है और किसी काम की ओर हठात् उन्हें झुकाने का प्रयत्न किया जाता है तो उस दशा में प्रायः उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अस्तु उनके साथ प्रताड़नापूर्ण शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जब किसी बात को समझाना हो तो उसे भावों और शब्दों में अभिव्यक्त करना चाहिए कि बच्चे के हृदय को चोट न पहुँचे और अपनी गलती भी वह अनुभव कर ले।

बच्चे को जब खेलने के लिए पर्याप्त स्थान और स्वतन्त्रता मिलती रहेगी और शोर मचाने के लिए कोई बन्धन नहीं होगा तब वह आपकी प्रार्थनाओं को अधिक ध्यान से सुनेगा और उनके अनुसार आचरण करने को तैयार होगा। इसके विपरीत यदि आप डरा धमकाकर कोई काम कराना चाहें तो वह नहीं कर सकता। किसी काम में यदि हम उससे शीघ्रता प्रदर्शित करें और शीघ्र ही पूरा करने के लिए जोर दें तो बहुत सम्भव है कि वह उसका प्रतिकार कर देगा। उत्साही बालक तो एक विरोध खड़ा कर देगा और धीमा बच्चा और भी धीमा हो जायगा। यदि नहाने जाने के लिए बच्चे से यों कहा जाय कि 'शीघ्र तैयार हो जाओ' तो वह दबाव अनुभव करेगा। इसकी जगह 'आओ हम लोग तैयार हो जायें,' यह तो अधिक प्रभावोत्पादक होगा। बच्चों के ही ध्यान के हेतु किसी काम को इस तरह न कह कर 'आओ हम इसे कर लें' या 'मैं तुम्हारी सहायता कर दूँ' यह कहें तो यह उस पहले की आज्ञा अधिक प्रभावित करेगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज्ञा के स्थान पर यदि हम सहकारिता या मनोवैज्ञानिकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करें तो बच्चों के हित में अधिक अच्छा होगा।

इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे को किसी बात के लिए सीधा आदेश न देकर सहयोग का भाव प्रदर्शित करके उस कार्य का निर्देश करना चाहिए। बच्चों के साथ जब इस प्रकार का आचरण करेंगे तो उनके भविष्य पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। इसके लिए प्रत्येक परिवार में कुछ आवश्यक नियम होने चाहिए जिनका पालन प्रत्येक पारिवारिक सदस्य के लिए अनिवार्य होना चाहिए। साथ ही उनका उल्लंघन करना विशेष अपराध नहीं मानना चाहिये इन नियमों का स्पष्टीकरण बच्चे की अभिवृद्धि के साथ-साथ ही करते जायें जिससे बच्चे भी उनका पालन कर सकें।

सत्यता—बहुत छोटे बच्चों को प्रारम्भ में सत्य बोलने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है पर ज्यों-ज्यों उनकी आयु अधिक होती जाती है त्यों-त्यों उनमें इस प्रवृत्ति का ह्रास होता जाता है। यदि सच्चे भाव से देखा जाय तो सत्य बोलना एक साधारण काम नहीं है। यह एक परिपक्व व्यक्ति के लिए भी कठिन-सा है। ऐसी स्थिति में हमें बच्चों की इस प्रवृत्ति को दृढ़ करने का प्रयत्न करना चाहिए जब कि ऐसा चाहने पर भी किसी परिस्थिति विशेष के आ जाने पर वे यह मार्ग छोड़ना चाहें। कभी-कभी जब वे झूठ बोलने की चेष्टा करते हैं तो माता पिता उन्हें शीघ्र ही क्रोध प्रदर्शित कर प्रतिवाद करते हैं। किन्तु इससे उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अपितु वे घबरा-से उठते हैं। हमें ऐसा न करके मनोवैज्ञानिक ढंग से उन्हें इधर से मोड़ना चाहिए। बच्चों में स्वभावतः नैतिक भावना नहीं रहती है। वे अपने गुरुजनों या माता-पिता द्वारा ही सीखा करते हैं। उन्हें यह बता देना चाहिए कि वे झूठ बोलने पर पहचान जाते हैं। यदि बच्चे इस बात को जानना चाहें तो उन्हें बता भी देना चाहिए कि किस प्रकार से असत्य वक्तृता का ज्ञान कर लेते हैं।

सत्य बोलने की समस्या पर विचार करते समय विभिन्न प्रकार के असत्य भाषणों का विश्लेषण कर लेना आवश्यक है। पहली प्रमुख अवस्था जिसमें बच्चा झूठ बोलता है यह है कि डाँट-फटकार या मार से बचने के लिए बच्चा कोई बहाना ढूंढ़ता है जिससे वह अपनी गलतियों पर परदा डाल सके और इस प्रकार वह झूठ बोलता है। इस अवस्था में यह दशा अत्यन्त अहितकर है और हमें इसके प्रति सावधान रहना चाहिए। झूठ बोलने

की एक दूसरी अवस्था है बच्चे का अहंकार। बच्चा अपनी अथवा अपने माता-पिता की वस्तुओं के प्रति बहुत बड़ा मोह रखता है और इसीलिए वह कहते हुए सुना जाता है 'मेरे पिता जी की कार शहर में सबसे बड़ी कार है।' कभी-कभी बच्चा नई-नई खोजों के विषय में सोचा करता है अथवा किसी दूसरे बच्चे के मुंह से ऐसी खोजों या बातें सुनकर उनसे प्रभावित होकर स्वयं ऐसी खोजों का इच्छुक होकर झूठ-मूठ कहता हुआ पाया जाता है, "मैंने एक झील का पता लगाया है जिसमें सुनहरी मछलियां हैं"। इस प्रकार के अनमोल वाक्य जिनमें कल्पना की उड़ान अपनी चरम अवस्था को पहुँचा रहती है बहुधा बच्चे के मुँह से सुनी जाती हैं। इसमें एक रहस्य है। क्या हम आप भी ठीक इसी प्रकार के वाक्य अपने आप से नहीं कहते? खोंचेवाला किसी दिन २०) के कमा लेने की कल्पना करके अपने मन से पूछ बैठता है—"इस रुपये का क्या करोगे? और स्वयं उत्तर भी दे लेता है। इसी प्रकार कोई क्रिकेट का खिलाड़ी आधी रात को खाट पर लेटा-लेटा हर रात बाउन्ड्री मारा करता है। इस प्रकार के झूठ हम भी बोलते हैं लेकिन अपने मन से, बच्चे में सरलता है, अतः वह दूसरे से बोलता है और हम उसके इस काम को निन्द्य समझते हैं। बच्चे दूसरे को प्रभावित करने के लिए ही इस प्रकार का झूठ बोला करते हैं किन्तु जैसे-जैसे उनका मानसिक विकास होता जाता है वे इस रोग से मुक्ति पाते जाते हैं।

इसके पूर्व कि हम बच्चों को झूठ बोलने के लिए सजा दें हमें स्वयं अपने मन से निम्नलिखित प्रश्न करने चाहिए —

(१) क्या हमने बच्चे को किसी अपराध पर इतना भारी दण्ड दिया है कि भविष्य में वह पुनः इस अपराध का सामना करने में अच्छा झूठ बोलना समझता है।

(२) क्या बच्चे की प्रत्येक इच्छा का विरोध हम इतनी तीव्र गति से करते हैं कि वह अपनी किसी प्रबल इच्छा की पूर्ति के लिए झूठ बोलना ही एक मात्र मार्ग पाता है।

(३) क्या हम स्वयं बच्चे के सम्मुख सर्वदा सत्य बोलते रहे हैं। यदि हम उपरोक्त तीनों अवस्थाओं में मन को उचित पाते हैं क्योंकि

हमारा दण्ड असहनीय नहीं है, विरोध अकाटय नहीं है और बच्चे के सम्मुख हम कभी सत्य का गला नहीं घोटते रहे हैं तो निश्चय ही हमारा बच्चा असत्य से परिचित नहीं हो पायेगा। यदि हम बच्चे के अपराधो का दण्ड अत्यन्त कठोर रखते हैं तो बच्चे के लिए एक मात्र साधन झूठ बोलना है। माना कि कठोर दण्ड देकर आप उसके दो-चार दुगुणो को कुछ देर के लिए दबा दें, यह भी माना कि अधिक से अधिक शारीरिक दण्ड दकर इससे उसका अपराध स्वीकार करा लें। किन्तु दुगुणो का दबाना और बलपूवक अपराध स्वीकार कराना ठीक उस फोडे के समान है जिसके मुँह पर बराबर ताजा मास चढ़ जाया करता है। ऊपर से देखने में स्थान बिल्कुल चिकना और सब शात होगा किन्तु भीतर ही भीतर फोडे का विष रक्तवाहिनी शिराओं को खा सकता है। बच्चे का दबा हुआ दुगुण छिपकर दूसरी ओर से बडे वेग से निकलेगा और बराबर इस ताक में रहेगा कि आप उसकी गलतियाँ पकड न पावें। बहुधा यह देखा जाता है कि माता-पिता बच्चे को अपराध के लिए तो कम, किन्तु अपराध छिपाने के लिए अधिक दण्ड देते हैं। परन्तु वे यह और बडी भूल करते हैं। इसका अर्थ तो यह हुआ कि बच्चा और भी होशियारी से अपराध छिपाने तथा काफी चालाकी से झूठ बोले। अत सच तो यह है कि बच्चे को झूठ से बचाने के लिए आप झूठ-सच का अवसर ही न आने दीजिए। आप यह मत पूछिए कि तुमने मजन किया है? बच्चे से कहिए—मजन कर लो। ऐसी अवस्था में सच बोलने की ९९ प्रतिशत सम्भावना रहती है।

मुझे अपने अध्यापक जीवन का एक लघु अनुभव याद आ रहा है। नगेन्द्र नाम का एक लडका था। उसे अपने साथियो को बहकाने में बड़ा मजा आता था। वह रोज नई-नई सूचनायें ले कर आता। कभी एक बकरी के दस बच्चे पैदा होने की खबर देता तो कभी आम के पेड से महुआ टपकाता कुछ दिनों तक उसकी यह कला खूब चली। उसका उत्साह बढ़ता गया। उसकी आदत इतनी प्रौढ़ हो चुकी थी कि वह प्रत्येक बात में झूठ बोलने लगा। मैंने कुछ दिनों के बाद उसे एक दिन 'ताजा अखबार, की उपाधि दी। लडको के कानों तक बात गई। नगेन्द्र से ताजा अखबार हो गया यह और मैंने देखा दूसरे दिन ताजा अखबार' बिल्कुल ठडा पडा है।

उनके पास सबका भी कमी नहीं थी लेकिन नाम इतना थी कि कुछ पर नहीं पाता था। लड़का ने शोर किया—'राजा अवतार कोई गजट' । मैंने कहा—चुप रहो। नगेन्द्र चुप था पर उसका हृदय जैसे चिल्ला चिल्ला कर कह रहा था कि मेरी यह उपाधि मुझसे ले लो। आज भी यह वर्षों की पुरानी घटना है। मुझे बिल्कुल कल की लगती है और नगेन्द्र की दशा पर उस दिन की भाँति आज भी मुझ दया आती है।

बच्चा में मनोविनोद के लिए बोले गये झूठ को पाप समझकर इन्हें प्रताड़ित करना स्वयं बहुत बड़ा पाप है। यदि ऐसा झूठ पाप हो सकता है तो कथाकार, उपन्यासकार और काव्यकार सबसे बड़े झूठे अथवा सबसे बड़े पापी हो सकते हैं। हाँ, देखना यह है कि असत्य भाषण में बालक का उद्देश्य क्या है? यदि बच्चा नगेन्द्र की भाँति झूठ बोलता है, तो वह पाप नहीं करता है किन्तु यदि किसी दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह असत्य भाषण करता है तो यह उसका अनुचित काम है। कथाकार अपनी कहानी में प्रेम घटना, यात्रा मिलन वियोग आदि कराया करता है किन्तु उसे ही यदि वह अपने दैनिक जीवन में प्रयुक्त करे। अर्थात् अपने साथियों को सूचित करे कि अमुक स्थान पर एक ट्रेन दुर्घटना हो गई है तो यह उसका असत्य भाषण कहलायेगा। वास्तव में झूठ वह दोनों दशाओं में बोलता है किन्तु एक झूठ को लेकर वह विख्यात होता है, और दूसरे के कारण कुख्यात। तात्पर्य यह कि बच्चे में जब कभी भी इस प्रकार के झूठ बोलने की आदत पड़े तो उस उसे किसी दूसरी ओर लगा दें। उदाहरणार्थ बच्चे ने कहा—"मैंने एक बहुत बड़ा तालाब देखा है" तो आप कहिए—'हाँ होगा। उसमें कितनी बड़ी-बड़ी मछलियाँ थीं? बच्चे ने कहा—'मकान इतनी बड़ी-बड़ी'। आप कहिए हाँ समुद्र में इतनी ही बड़ी बड़ी मछलियाँ होती हैं। तब क्या हुआ? 'बच्चा उत्तर' देता है—'तालाब में फूल खिले थे।' आप कहिए—'हाँ कमल का फूल तालाब में खिलता है। तब क्या हुआ? इसी प्रकार आप उसे पूछ चलिए। इसलिए वह यहाँ पर कल्पना के पंखों पर उड़ता है। अच्छा करिये कि उसकी कल्पना की लगाम की एक रस्सी आपके हाथ में आ जाय और जब आप आवश्यक समझें तब कुछ बातें इच्छानुसार भी मोड़

लें। लेकिन लगाम कडी न हो, वरना गाडी आगे नही बढ़ेगी। थोड़ी देर बाद ही बच्चा कल्पना से यथार्थ पर उतर आएगा क्योंकि उसकी कल्पना शक्ति सीमित है और अन्त में आप कहिए "बडी अच्छी कहानी थी। कल फिर ऐसी ही कहानी सुनाना।" बच्चा झूठ से हटकर कहानी पर आ गया। कहानी का उचित समय भी बता दीजिए फिर क्या पूछना। बात-बात में डीग हाँकने और गप्प मारने की आदत समाप्त हो जायेगी।

दयालुता—दयालुता या उदारता शिक्षा की वस्तु नही, उदाहरण की वस्तु ह। हम बच्चो के सम्मुख दयालुता और उदारता का जितना ही सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते जायेंगे उतनी ही मात्रा में उक्त प्रवृत्ति बच्चे में पाई जायेगी। घर के वातावरण में ही जिस उदारता अथवा अनुदारता का अनुभव बच्चा करता है बाहर वह उसी का प्रदर्शन करता है। हम बच्चे के साथ कसा व्यवहार करते हैं, कुटुम्ब का एक सदस्य दूसरे सदस्य से कसा व्यवहार करता ह, अपरिचितो के साथ हमारा व्यवहार कमा होता ह आदि सभी बातो का सीधा सम्बन्ध बच्चे से है।

बहुधा हम देखते ह कि बच्चो में स्वार्थपरता की भावना इतनी तीव्र होती ह कि उस तीव्रता के प्रवाह में दयालुता और उदारता नामक भाव तिनके से बहते दिखाई देते है। उस समय तो ये भाव भँवर में विलीन हो जाते ह जब बच्चों की इस स्वार्थपरता के लिए हम उन्हें प्रताडित या दण्डित करते ह। बच्चा स्वभावत वस्तुओ पर एकाधिकार करना चाहता ह। क्षणिक ही सही किन्तु उसकी यह प्रवृत्ति तीव्र होती ह और उस समय तो जिस वस्तु की ओर लपकता है अथवा जिस पर अपना अधिकार कर चुका रहता ह उस पर किसी दूसरे का अधिकार नही देखना चाहता। हम उसकी इस प्रवृत्ति को दबाव डालकर समाप्त करना चाहते ह। किन्तु जसा कि कई स्थानो पर कहा गया ह दबाव डालने स कोई चीज कोई दूसरा विकृत रूप धारण कर सकती ह समाप्त नही हो सकती। सुन्दर उदाहरण द्वारा ही हम बच्चा में दयालुता और उदारता भर सकते ह। वस्तुओ के प्रति उनका मोह अवश्य बना रहेगा क्योकि वह तो स्वाभाविक है। किन्तु यदि शान्त वातावरण और उदारता के सुन्दर उदाहरण उनके सामने रक्खे गये तो बच्चे अपने समवयस्का के लिए अपनी वस्तु का

अन छोड़ सकते हैं अथवा थोड़ी देर के लिए उस वस्तु का भी दे सकते हैं।

उपहार—बच्चों का जितना आनन्द वस्तुग्रहण में होता है उतना ही प्रतिदान में भी। यदि उनकी इस प्रवृत्ति का विकास किया जाय तो निश्चय ही उनमें उदारता की भावना जागृत हो जाय। कुछ माता पिता अपने बच्चों से ही भिक्षादान कराते हैं। उनका दृष्टिकोण पूर्णतया धार्मिक होता है। अतः उससे बच्चा के मनोवैज्ञानिक विकास में हमें कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। यदि उन्हीं बच्चों से हम खिलौनों का आदान प्रदान अथवा किसी बच्चे को सदा के लिए कोई खिलौना को दिन दान का कार्य सम्पादित करावें तो उन पर बहुत ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा।

हमारे देश में जहाँ तक मुझे ज्ञात है कोई ऐसा त्योहार नहीं है जिसमें बच्चों को उपहार प्रदान किया जाता हो। किन्तु ऐसे त्योहार के अभाव में भी हम कुछ विशेष अवसर निर्धारित कर सकते हैं जब बच्चों को उपहार देने के साथ-साथ बच्चों द्वारा भी उपहार दिलाने की व्यवस्था की जाय। उपहार देने की प्रवृत्ति सहनशीलता, उदारता, विनम्रता आदि अनेक सद्गुणों का सूत्रपात कर सकती है। अतः अनेक बच्चों में इस प्रकार की प्रवृत्ति जगानी चाहिए।

अध्याय ७

घर में द्वितीय सन्तानोत्पत्ति

दूसरे बच्चे का होना बड़े भाई-बहिनों के लिए आनन्ददायक होता है। वे इस समाचार से प्रसन्न होते हैं किन्तु शीघ्र ही उनका मस्तिष्क एक प्रकार की स्पर्धा से भर जाता है। दो या ढाई वर्ष के शिशु को आने वाले बच्चे की सूचना कैसे दी जा सकती है। यदि बच्चा लगभग पाँच वर्ष का हो तब तो वह समझ सकता है किन्तु ढाई वर्ष के बच्चे के लिए यह समस्या हो जाती है। भावी बच्चे की सूचना पहले बच्चे को दे देना आवश्यक होता है। इसके लिए लोगों का प्रायोगिक वाक्य है 'क्या तुम बच्चा लेना चाहते हो' और इस प्रकार पाँच वर्षीय शिशु भावी शिशु के आगमन की सूचना पा जाता है। ऐसी बात देखी जाती है कि शिशु जितना ही छोटे वय का रहेगा उतना ही शीघ्र दूसरे शिशु के उत्पन्न होने पर वह परिवार में घुल-मिल सकेगा पर बड़ा होने पर उसमें स्पर्धा का अनुभव किया जाता है। कारण यह होता है कि इस नये शिशु के आ जाने से परिवार का आकर्षण उसी की ओर बढ़ जाता है। माता-पिता का स्नेह भी अधिकांश में उसी को मिलने लगता है और इस प्रकार पहले बच्चे की उपेक्षा-सी होने लगती है। वह भी इस चीज को समझता है और इसका कारण नये शिशु को ही बनाता है। प्रतिक्रिया में वह उससे जलने लगता है। चतुर लोग सन्तान की इस मनोवृत्ति को ताड़ कर उसकी जड़ को उखाड़ फेंकते हैं। वे कभी भी पहले बच्चे की उपेक्षा का अवसर नहीं लाते और उस पर पूर्ववत स्नेह बनाये रखते हैं। चाहिए भी ऐसा ही, ऐसा होने से बच्चे में स्पर्धा के बीज ही अंकुरित नहीं होने पायेंगे।

दो वर्ष की आयु तक बालक घुटने के बल चलकर धीरे-धीरे खड़ा होना, तत्पश्चात् लुढ़क-लुढ़क कर चलना सीख जाता है। अभी तक वह घर के भीतर ही रहता रहा है। किन्तु दो वर्ष के बाद वह बाहर निकलना प्रारम्भ कर देता है। वह इधर-उधर आने-जाने लगता है। दौड़ने का व्यापार भी वह भली भाँति जान जाता है। उसकी यह गति पाँच वर्ष

तक रहती है जब तक वह स्कूल में नहीं चला जाता है । अतः २ से ५ वर्ष का समय उसके लिए बहुत देखभाल करने का होता है । इसमें उसके भूल जाने, पानी-आग में गिर जाने या न खाने वाली चीजें खा लेने का भय होता है । पाँच वर्ष के पश्चात् उनका जीवन स्कूली जीवन बन जाता है । इस बीच वाली अवस्था में बच्चा नासमझ होता है पर स्नेह और प्यार का प्रभाव उस पर पड़ता है । ऐसी अवस्था में इस भावी शिशु की सूचना अवश्य ही दे देना चाहिए। प्रौढ़ चतुर बच्चा जिसके पास कुछ बुद्धि रहेगी, वह तो माता की शारीरिक बनावट देखकर या होते हुए परिवर्तन देखकर ही कुछ भांप जायेगा और मन ही मन इसकी कल्पना भी कर सकेगा ।

जब बच्चे को भावी शिशु की सूचना मिल जाती है तो उस समय जब वह शान्ति वातावरण में होता है, इस पर विचार करने लगता है। शिशु को लेकर नाना प्रकार के विचार उसके मस्तिष्क में उठते हैं। 'बच्चा कहाँ से आयेगा', 'उसे किसने बनाया' अथवा 'वह कहाँ है' आदि प्रश्नों की उसके मस्तिष्क में आँधी सी चलने लगेगी । वह अपने प्रश्नों का उत्तर चाहेगा और इसके लिए अपने माता पिता या अन्य समीपवर्तियों से वह उत्तर की भी माँग करेगा। कभी-कभी लोग उन्हें धोखा देकर यह बता देते हैं कि बच्चा आकाश से गिरा, किसी झाड़ी में पड़ा मिला अथवा डाक्टर के काले झोले में मिला। पर ये उत्तर बच्चों को संतोष नहीं देते । सच पूछिये, तो बच्चों को ऐसी बेसिर पर की बातें बतानी भी नहीं चाहिए । कुछ बच्चे तो इन बातों को गम्भीरतापूर्वक समझने लगते हैं और जब उन्हें अपने बड़ों की बताई बातें झूठी भान होती हैं तो उनमें एक प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है । अतः बच्चों को कभी ऐसी झूठी बातों में भुलाना नहीं चाहिए । यह अवश्य है कि ये बातें सत्य अर्थ में उसके मस्तिष्क के परे की चीजें हैं फिर भी ऐसे ढंग से बता देना चाहिए कि उसे किसी सीमा तक संतोष मिल जाय । यदि इसी बात को यों कहा जाय कि बच्चे की वृद्धि बीज की भाँति होती है, वह माता के उदर में ही भोजन करता और बढ़ता है । जब इतना बड़ा हो जाता है कि पेट में उसे जगह की कमी मालूम होती है तो वह बाहर निकल आता है ।

से बच्चे को पर्याप्त संतोष होगा और बात भी तथ्य के निकट है। यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उसे समझाने की चेष्टा की जायगी तब न तो वह समझ ही पायेगा और न हमारा समझाना ही उपादेय होगा। परन्तु यदि कोई शिशु अधिक जानने की चेष्टा करता है तो उससे इतना कहना यथेष्ट होगा कि इसका अनुभव उसे कुछ समय बाद अच्छी तरह हो जायगा।

कभी-कभी बच्चो को जब भावी शिशु का भेद ज्ञात हो जाता है तो अपने भाई या बहन से बड़प्पन का भाव प्रदर्शित करते हुये आनन्दित होते हैं। उन्हें इससे एक प्रकार का आनन्द उपलब्ध होता है। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा जाता है कि इस खबर की सूचना वे पड़ोसियो तथा आनेवाले अतिथियो तक को देने लगते हैं। किन्तु उन्हें ऐसा करने से रोकना चाहिए। माताओ को भी ज्यों-ज्यों गर्भ का समय बढ़ता जाय, बच्चे के साथ कम सम्पर्क रखना चाहिए। यदि बच्चा उसका मनोरंजन का साधन है तो उसे पुस्तकाध्ययन अथवा अन्य किसी साधन का उपयोग करना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे का सम्पर्क भी कम हो जावेगा और उसके सन्देह की अभिवृद्धि देनेवाली बात भी समाप्त हो जावगी। एसे अवसर भी देखने को मिलते हैं कि कोई समीपस्थ बच्चे को चेतावनी दे देता है कि भावी शिशु उसकी नाक तोड डालेगा। इस पर उसमें भावी आशंका का भी अभ्युदय हो जाता है और यह भी सन्देह घर कर जाता है कि क्या उसका यों ही मजाक उड़ाया जायेगा।

सौर गृह में पहले बच्चे की सुश्रूषा—माता को सौरगृह में चले जाने पर पहले बच्चे की सेवा-सुश्रूषा का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यदि बालक का घर पर ही सुरक्षित रखा जाय तो वह माता की अनुपस्थिति में भी रह सकता है। पर ध्यान रहे, उसके दैनिक कार्य पूर्ववत चलते रहें। उसके खान पहनने नहलाने सोने आदि में कोई परिवर्तन नहीं आना चाहिए। उसके खिलौने और साथी वृन्द तथा पिता की उपस्थिति अनिवार्य है। यदि ये सभी बातें लभ्य हो तो सम्भव है कि वह माता के पृथक्करण पर विचार ही न करे। किन्तु फिर भी यदि वह माता को याद करता है और अलग रहना नहीं चाहता है तो प्रसव के पहले ही उसे उसकी छुट्टियाँ बाहर व्यतीत करने का प्रबन्ध कर देना चाहिए। प्रायः बच्चे बाहर

जाना बहुत पसन्द करते हैं। वे इस बात पर तैयार हो जावेंगे। उसे किसी सुरक्षित स्थान पर भेजना चाहिए जहाँ उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो। उसके लौटने की तिथि सौर-गृह से निकलने के पश्चात् निश्चित होनी चाहिए। यदि इस पर भी बच्चा तैयार न हो तो उसकी व्यवस्था घर पर ही करनी चाहिए और दिन में एक या दो बार माता के दर्शन भी करा देना चाहिए ताकि उसे यह ज्ञात हो जाये कि उसकी माता कहीं गई नहीं है। यदि माता का प्रसव प्रबन्ध अस्पताल में है तो वहाँ भी ऐसा ही करना चाहिए क्योंकि वहाँ बच्चे के लिए कोई स्थान नहीं मिल सकता।

सौरगृह से वापिसी—सौरगृह से निकलने पर यदि पहला बच्चा भेजे गये सम्बन्धी के यहाँ से लौट आया है तो माता को सबसे पहले नवजात शिशु की देखभाल किसी के जिम्मे कर उससे मिलना चाहिए तथा उसकी बातें सुननी चाहिए। इसके पहले नवशिशु का भेद उसे नहीं बताना ही अच्छा होगा। जब वह अपनी नई बातें बता चुके और भोजन आदि समाप्त कर ले तो उसके लिए कुछ ऐसी वस्तुएँ प्रदर्शित करनी चाहिए जो उसके लाभ की हों। उनमें उसके कपड़, खिलौने आदि हो सकते हैं। उन्हीं वस्तुओं की प्रसन्नता में उसे बच्चे की भी खबर दे देनी चाहिए। चतुर माताएँ अपने अवकाश के समय बच्चों के लिए वस्त्र आदि तैयार करती हैं। इन वस्तुओं से बच्चे को कुछ प्रसन्नता होती है और उसके साथ वह इस स्पर्धा को भी भूल जाता है।

जब बच्चे को नवजात शिशु की खबर पहले से ही होती है तब तो यह प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु जब उसे सूचना देनी होती है तो बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। माता को नये शिशु में ही अधिक समय लगाना पड़ेगा और उसे पहले को स्नेह करने का समय ही नहीं मिलेगा। उस अवस्था में पहले बच्चे को पिता या किसी संरक्षक के हाथ में छोड़ना चाहिए जिससे उसे कोई अभाव न मालूम हो। यदि पिता को समय मिले तो बच्चे के साथ ही अधिक रहना चाहिए। उसे खिलाने, पिलाने, टहलाने आदि का भार पिता को स्वयं लेना चाहिए। सच पूछिए तो नये शिशु के उत्पन्न होने पर पहले बच्चे को पिता के साथ घनिष्ट होने का अवसर मिलता है। यदि पिता सावधानी से काम लेता है तो बच्चा पूर्ववत् ही

आनन्दित और उल्लसित रहेगा और उसके हृदय म नये बच्चे के प्रति कोई प्रतिकूल भावना जागरुक नही होने पायगी। ऐसी दशा में भी माता के कुछ क्त्तव्य होते ह जिनका पालन उसके लिए आवश्यक होता ह । नव शिशु के सो जाने पर उसे चुपके से उसके समीप से हट जाना चाहिए और दूसरे बच्चे से मिलकर अपना स्नेह जताना चाहिए । यदि सम्भव हो तो उसे भी अपने ही साथ रखना चाहिए किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि दूसरे बच्चे को यह अनुभव न हो सके कि प्यार का अश सम्पूण रूप से नव शिशु को ही उपलब्ध होता है और वह इससे वचित रह जाता है। ऐसा व्यवहार होने पर वह नये बच्चे से स्पर्धा करना प्रारम्भ कर देगा। अत इस बात को समझते हुए उसे अपने साथ शान्तिपूवक रहने देना ही बुद्धिमानी की चीज होगी। यदि उस पर नये बच्चे की देख-भाल का काम छोडा जाय तो कुछ दिनों तक तो वह बडी उत्सुकता के साथ उसमें समय रहेगा किन्तु बाद में उसकी रुचि समाप्त हो जायेगी और वह इस बच्चे के साथ न खेलकर अपने खिलौने से ही मनोरजन करना चाहेगा। शयनगृह का दरवाजा पहले बच्चे के लिए खुला होना चाहिए जिससे वह जब माता की आवश्यकता समझ, आ सके। कारण यह कि पाँच वर्षों तक निरतर वह उसी माता के साथ रहा ह और उसका स्नेहभाजन बना ह। अत वह फिर भी चाहेगा कि उसे वही प्यार मिले। बहुधा भोजन के समय उसे माता का स्मरण हो जाया करेगा और वह चाहेगा कि वह माता के साथ ही खावे। अत इस मामले में बहुत सतक होना चाहिए। उसके भोजन के समय यदि सम्भव हो तो माता को ही रहना चाहिए या ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि बच्चा माता का अभाव न अनुभव कर सके।

प्राय बच्चे माता के कार्यों में प्रसन्नतापूवक हाथ बटाते हैं। भले ही माता के लिए यह विघ्न ही क्यो न हो। ऐसे अवसर पर बच्चे को रोकना नहीं चाहिए। रोकने से उसके हृदय को ठेस पहुँच सकती है। आपका थोडा-सा अधिक समय ही लगे तो क्या, उसके आनन्द में व्यवधान पहुँचाना ठीक नही। हाँ वह आनन्द हानिकर न हो। काम करते समय भी बच्चे को बातें करके उत्साहित करते रहना चाहिए। इससे

उसका समय भी आनन्द से व्यतीत हो जायेगा और माता की ममा। पान में भी सफल हो सकेगा। यदि वह वाटिका या मैदान में ताजा शुद्ध वायु का सेवन करने के लिए नहीं जाना चाहता है तो इसकी अभी उसे कोई आवश्यकता भी नहीं है। आप इस पर उसकी इच्छा के विरुद्ध जोर न दीजिये, अपितु किसी बहाने अपने साथ या उसके हमउमरों के साथ वाटिका की सैर करा दीजिए। इससे आपका काम भी हल हो जायेगा और बच्चे के मस्तिष्क पर कोई दबाव भी नहीं पड़ेगा। यदि पहला बच्चा बालिका है तब तो उसे बालक की अपेक्षा शीघ्र नवजात शिशु का समीपस्थ बनाया जा सकता है। वह गुड़िया से अधिक स्नेह करेगी और यदि उसे कुछ खिलौने ऐसे भी दे दिये जायें जो नव शिशु के लिए लाये गए हों तो उसका झुकाव शिशु की ओर भी हो जायेगा। वह नए बच्चे को अधिक प्यार करने लगगी और अपना अधिक समय उसकी देख भाल में ही बितायेगी। उसकी ईर्ष्या की भावना का लोप हो जायेगा। बालिकाओं की भाँति पाँच वर्ष के भीतर की आयु वाले बालक भी प्रायः ऐसा कर सकते हैं।

नवरुचि—नवजात शिशु के समागम के पश्चात् पहले बच्चे में एक नवीन ढंग से आनन्द उपार्जित करना चाहिए। यदि वह किसी समवयस्क के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर खेलता है और अपना मनोरंजन करता है तो यह बहुत अच्छा है किन्तु उस दशा में जब वह ऐसा नहीं करता तो उसे पाठशाला में भर्ती कर देना चाहिये। इससे उसका अधिक समय वहाँ पठन और समवयस्कों के साथ में बीतेगा। वह घर पर माता तथा छोटे बच्चे को छेड़-छाड़ नहीं कर सकेगा। किन्तु हाँ, यहाँ एक बात मस्तिष्क में अवश्य रखनी चाहिए कि बच्चे को नव शिशु की उत्पत्ति के पहले ही पाठशाला भेज देना चाहिए। इससे बच्चे का पैदा होना उसके लिए कुतूहल की बात नहीं होगी। पठन में उसकी रुचि भी लगेगी और वह माता के प्यार में भी कोई परिवर्तन नहीं देख सकेगा। इस दशा में यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे के पाठशाला जाते और आते समय भोजन और वस्त्र ग्रहण करने की कोई कठिनाई न हो। माता को अपना थोड़ा सा समय उसके इस काम में देना चाहिए और उसके प्रति किसी

प्रकार की उदासीनता नही दिखानी चाहिए। यदि बालक को नव शिशु के उत्पन्न होने के पश्चात् पाठशाला में भर्ती कराया जाता ह तो यह उतना उपयुक्त नही होगा जितना कि पहले कराने से होता। वह यह ताड जायगा कि उसे व्यवधान न बनने के लिए पाठशाला भेजा जा रहा ह। वह नव शिशु की देखभाल में विघ्न उपस्थित करनेवाला है। ऐसे विचार जब पहले बच्चे के मस्तिष्क में आ जायेंगे तब वह स्कूल में जी नहीं लगायगा और माता पिता से खिचा खिचा सा रहेगा। यह छोटे बच्चे को ईर्ष्या की दृष्टि से देखेगा तथा उसे अपने माग का कटक समझ बठेगा। अस्तु इस बात मे प्रिय पहले से ही सतव रहना चाहिए क्योंकि भविष्य तथा चरित्र का निर्माण बहुत कुछ स्कूली-जीवन पर निर्भर करता ह।

ईर्ष्या के चिह्न—बच्चे मे साथ जब सहानुभूति और अच्छी भावना का प्रदर्शन होता ह तब उनमें भावी शिशु के प्रति ईर्ष्या पदा होन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु बच्चो में तो यह भावना स्वभावत होती ह जो दूर करने पर भी नही दूर की जा सकती। इसका प्रतिरूप अनेक ढग का होता है जो बच्चो में दिखलाई पडता ह। कुछ तो छोटे बच्चे को प्यार पात हुए देखकर स्वय छोटा बनने का प्रयत्न करते ह और वह स्नेह पाने की चेष्टा करते ह जो नवशिशु को दिया जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा जाता है कि बच्चे जो बहुत दिनों से चारपाई पर पेशाब-पाखाना करना छोड चुके ह नवशिशु को दखकर पुन ऐसा करना आरम्भ कर देते है। इससे माता को उसकी आदत पर तो अवश्य चिढ़ होती है किन्तु यहाँ थोडी सी सावधानी से काम लेना चाहिए। बच्चे को अपनी चिढ़ का प्रदशन कभी नही करना चाहिए। कभी ऐसा शब्द नही कहना चाहिए जिससे उसे मालूम हो जाय कि माता उस पर चिढ़ी ह अपितु इन त्रुटियो पर गम्भीर हो जाना चाहिए और बच्चे को अधिक स्नेह जताना चाहिए। छोटे बच्चे को देखकर वह माता की गोद में भी जाना चाहेगा। ऐसी दशा में उसे रोकना नहीं चाहिए और अपना अधिक स्नेह उसे दिखाना चाहिए। उसे बात करने खिलाने पिलाने, नहलाने, घुलान आदि से यह विश्वास हो जाना चाहिए कि माता उसे नवशिशु की अपेक्षा अधिक प्यार करती ह। पर साथ ही कभी-कभी उसे यह भी समझा दना चाहि

कि 'क्या वह इतना बडा नहीं हो गया है कि माता की सहायता कर सके।' इसका उस पर प्रभाव पडे बिना नही रह सकता है। यदि उससे यह कहा जाय कि तुम बहुत बडे हो गये हो, तुम अपने से खाना खा सकते हो' तो इसका उस पर उल्टा ही प्रभाव पड़ सकता है। अतः ऐसे अवसरो पर समझ-बूझकर कार्य करने से उसकी मनोवृत्ति परिणत हो सकती है और वह अपनी उपयुक्त आदतो को छोड सकता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखने या सुनने को मिलता है कि बडे बच्चे ने छोटे बच्चे को पीट दिया अथवा चोट पहुँचा दिया। अतः इससे सतर्क रहना चाहिए। बच्चे को नवशिशु के निकट अकेले में नहीं छोडना चाहिए। यद्यपि सही अर्थ में उसकी इस आदत के उत्तरदायी माता-पिता ही हो सकते है जो उसे ऐसा करने को विवश करते है। उसका यही स्वभाव ईर्ष्या की उत्पत्ति करता है और इसका मूल उसके प्रति प्यार का अभाव है। यदि बच्चे की इस आदत का निराकरण हम प्रताडना से करना चाहें तो यह सीधे रूप में उसके ईर्ष्या की अभिवृद्धि करना होगा। उसे प्रताड़ित करने के बदले यदि हम उसे प्यार और दुलार, घुटन पर सुलाकर यह कहें कि उसका बर्ताव बच्चे के साथ कैसा क्रूर रहा है तो अवश्य ही वह कुछ अनुभव करेगा और सम्भवतः अपनी आदत भी छोडना चाहेगा। यदि हम जान लें कि बच्चे के हृदय में यह बात घर कर गई है कि नवशिशु माता-पिता के मिलने वाले प्यार में एक व्यवधान हो गया है तो माता को उससे और घनिष्ट बनना चाहिए, अपना स्नेह उसके प्रति बढ़ा देना चाहिए। समय-समय पर उसे यह भी कहने में नही चूकना चाहिए कि वह उसे बहुत प्यार करती है और सदा करेगी। इस ईर्ष्या की उत्पत्ति के कारण केवल माता-पिता नहीं हैं अपितु बच्चे के मित्र और उसके समवयस्क भी है। इस रोग की चिकित्सा माता पिता के हाथ में बहुत कम है। केवल वे इतना ही कर सकते हैं कि बच्चे के स्नेहाभाव को पूरा कर दें। यदि इससे भी उसके इस मनोयोग का निमूलन नही होता है तो इसे बच्चे पर छोड दीजिये।

संघर्ष—जब छोटा बच्चा घुटने के बल चलना शुरू कर देता है तो उस समय बडे और छोटे के सम्बन्ध में एक नया अध्याय जुड जाता है। जब

बड़ा बच्चा छोटे बच्चे को पालने में या बिस्तरे पर पड़ा हुआ देखता है तो उसके प्रति उसका स्नेह छलक पड़ता है। वह उसकी प्रतिष्ठा करता है। किन्तु जब वही छोटा बच्चा अपने पैरों के बल चलने लगता है और एक सुन्दर गुड़िया पा जाता है तो बड़े बच्चे की मनोवृत्ति परिवर्तित हो जाती है। वह उस गुड़िया को लेना चाहेगा। न पाने पर छोटे शिशु को चोट पहुँचाना चाहेगा और येन केन प्रकारेण खिलौने का अधिकारी बनना पसन्द करेगा। छोटा बच्चा भी उस खिलौने को अपने हाथ से निकलने नहीं देना चाहेगा। वह उसे बचायेगा और बड़ा बच्चा उसे छीनना चाहेगा। यहाँ एक प्रकार का बाल-संघर्ष हो जाता है। यदि वहा उन्हें कोई रोकनेवाला न रहे तो सम्भव है कि बड़ा बच्चा बलपूर्वक छोटे से खिलौना ले ले। इस अवसर पर बड़े बच्चे को तब तक नही समझाया जा सकता जब तक कि उसे एक वैसा ही खिलौना दे न दिया जाय। जब छोटा बच्चा अपना खिलौना तोड़कर बड़े बच्चे का खिलौना लेने की चेष्टा करेगा तो ठीक उसी प्रकार का संघर्ष उठ खड़ा होगा। बड़ा बच्चा उसे दूसरे को देना नही चाहेगा, फिर उसे जो खिलौने तोड डालता है। किन्तु यहाँ हम यदि उसका बड़प्पन प्रदर्शित करें तो सम्भवत वह पिघल सकता है और उसके वही भाव जागृत हो सकते हैं जो बच्चे के पालने की स्थिति में जगे थे।

बड़े बच्चे का छोटे बच्चे के साथ होने वाला वर्ताव बहुत कुछ माता-पिता के वर्ताव पर निर्भर करता है। यदि हम किसी बच्चे को उसके द्वारा की गई क्षति पर अप्रसन्न होकर पीटते हैं तो वह भी अपने से छोटे बच्चे की उसी भाँति की करतूत पर उसे क्यो नही शासित कर सकता है। यदि हम अपना व्यवहार बदल दें पीटने के बदले उन्हें मनोवैज्ञानिक ढग पर समझा दें तो वे भी इसी प्रकार का आचरण करेंगे। झगड़े की प्रवृत्ति कुछ बच्चो में स्वभावत ही होती है और वह उनकी अभिवृद्धि के साथ-साथ बढ़ती है। जिस प्रकार कुछ माताएँ स्वभाव से ही चिड़चिड़ी होती हैं और चेष्टा करने पर भी इस स्वभाव को नही छोड़ती, उसी प्रकार कुछ बच्चे छोटी-छोटी बातो को लेकर लड़ पड़ते हैं। पर यह उनका

दोष नहीं है अपितु उसकी अभिवृद्धि में यह एक अवस्था है जिसमें सभी बच्चे एक बार आते हैं।

यदि बच्चा कोई ऐसी त्रुटि करता है जो उसके लिए बहुत ही हानिकर है तो उस समय केवल उसकी करतूतें देखना चाहिए और जब वह अपना कार्य समाप्त कर ले तो गम्भीरतापूर्वक उसे उसकी करतूतों का स्पष्टीकरण करना चाहिए। इससे वह अपनी त्रुटि समझेगा और भविष्य में न करने का संकल्प कर लेगा। यदि हम उसे उसी समय पकड़ कर प्रताड़ना देना प्रारम्भ कर दें तो इसका उतना प्रभाव नहीं पड़ सकेगा जितना शान्तिपूर्वक समझाने में पड़ता। यदि बच्चे परस्पर झगड़ रहे हों और उनका झगड़ा अधिक बढ़ गया हो तो वहाँ शान्तिपूर्वक पहुँच कर बिना किसी का पक्ष लिये ही दोनों को अलग-अलग कमरे में बन्द कर दें। फिर उन दोनों से तथा अन्य उपस्थित लोगों से झगड़े का सच्चा कारण जानें और तब यह पता लगाना चाहिए कि त्रुटि किसकी है। इसके पश्चात् समझा-बुझा कर झगड़ा शान्त कर देना चाहिए। कारण कि बच्चों का झगड़ा कितने समय का होता ही है। अभी वे झगड़ा करते हैं और थोड़े समय बाद आप उन्हें एक ही साथ खेलते हुए गली में पायेंगे। यदि बच्चों के इन झगड़ों में बड़े लोग भाग लेने लगते हैं तो यह उनकी अज्ञानता है। भाई और बहिन जो शैशव में परस्पर लड़ा करते हैं बड़े होने पर मित्र हो जाते हैं और उनका प्रेम चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है। अतः यह मानना पड़ेगा कि सभी बच्चों में झगड़ा करने की एक अवस्था होती है जब कि वे स्वभावतः झगड़ा मोल ले लेते हैं। किन्तु जब उनकी बुद्धि जागरूक अवस्था में आ जाती है तब वे स्वयं ही इसे छोड़ देते हैं। एक परिवार के दो बच्चों का प्रेम धीरे-धीरे बढ़ता है और अधिक घनिष्ठ होता है। ऐसा भी देखा जाता है कि एक परिवार के दो बच्चे जो परस्पर निरन्तर लड़ते रहते हैं दूसरे परिवार के किसी बच्चे से झगड़ा हो जाने पर सम्मिलित लड़ाई करते हैं। बड़ा बच्चा अकेले रहने पर छोटे बच्चे के लिए अभिभावक का काम करता है और लाख ईर्ष्या होने पर भी उस समय क्या मजाल कि कोई उसके छोटे बच्चे पर आँख दिखा दे।

अध्याय ८

पुरस्कार और दण्ड

वहुधा यह देखा जाता ह कि लोग बालको को 'सुधारने' के लिए दण्ड की ओर बहुत ध्यान देते ह, किन्तु यदि उन्हें बालक का सुधार करना ही है तो वे उसे दण्ड से ही क्यों आरम्भ करते ह ? क्या नही पुरस्कार से आरम्भ करते ह। जब गुड देने स ही काम निकल सकता है तो फिर विप क्यों दिया जाय ? कुछ लोग इस पर आश्चय प्रकट करेंगे कि वालक पुरस्कार स अपनी वुरी आदतें कमे छोड सकता ह। किन्तु विश्वास कीजिए कि यदि वह पुरस्कार से अपनी वुरी आदतें नहीं छोड सकता तो दण्ड से तो और भी नही छोडण्ड उस सकता। दकी आदतो में स्थायित्व लायेगा, यह दृढ़ विश्वास कर लें। दण्ड यदि सुधार भी ला सकता है तो अस्थायी और साथ ही वुरी आदत को स्थायी बना देगा।

पुरस्कार के सम्बन्ध में कुछ लोगो का यह कहना है कि हम बच्चे को घूस दकर उससे अपनी इच्छा के अनुसार काय करावें—यही तो पुरस्कार का अर्थ हुआ। हाँ, उनका यह कहना सत्य है। पर आप घूस के रूप में पुरस्कार क्या देते ह ? यदि आप किसी व्यक्ति से कहियें कि मेरा अमुक काय कर दीजिए तो आपको इतना रुपया दूगा, तो यह घूस हुआ पर आप बच्चे से कहिये कि तुम दो दिन तक अपनी कमीज साफ रक्खो तो हम लोग बाजार करने चलेंगे और वहाँ अच्छी-अच्छी चीजें खरीदेंगे यह घूस नही हुआ। आप बच्चे के उपहार में पूरे परिवार को सम्मिलित कर लीजिए, फिर तो घूस का कोई प्रश्न ही नही रह जाता। यह उसी प्रकार हुआ कि किसी प्रसन्नता के अवसर पर आप मित्रो को अथवा प्रसन्नता लाने वाले को मिठाई खिलाते हैं। बच्चा केवल पुरस्कार की इच्छा से ही काय नही करेगा वरन् उसके पीछे एक यह भी तथ्य छिपा रहता ह कि वह घरवालो की प्रसन्नता में प्रसन्न होने के प्रलोभन को नहीं

छोड़ना चाहता। पर हाँ, इसके लिए उपयुक्त समय चाहिए। किसी कारण चिढे हुए बच्चो को पुरस्कार देने की बात ठीक उसी समय, वरना सवथा अनुचित ह।

किन्तु उपयुक्त विवरण मे हमारा यह अभिप्राय नहीं ह कि किसी भी दशा में बच्चे को दण्ड दिया न जाय। दण्ड दिया जा सकता है पर उसी समय यह भी मस्तिष्क में रखना चाहिए कि कुछ शरारत तो स्वभावत बालकों में होती ही है। उन्हें कभी-कभी इन शरारतो में भी बड़ा मजा मिलता है। अत हमें दण्ड देते समय इस तथ्य की उपेक्षा कदापि न करनी चाहिए। दण्ड के सम्बध में यह बता देना आवश्यक है कि दण्ड अपराध के अनुकूल हो और उसका अपराध से सीधा सम्बध हो।

शारीरिक दण्ड देना*--कुछ लोग मामूली बातो पर बच्चो को मारा पीटा करते ह। जब कभी बच्चे ने उन्हें छेड़ा या कुछ उलझाया कि वे तुरत उसे रुलाकर अपनी मुक्ति के लिए चपत लगा देते है। माताएँ बहुधा एसा किया करती है। वे कहती ह, "क्या किया जाय? वह दूसरे तरह से मानता ही नहीं।" क्यो भाई, मानगा क्यों नही? आपने ही तो उसकी आदत खराब कर रक्खी है कि वह जब माने तब आपकी इसी विधि स माने। और फिर यह भी कोई मानना हुआ। वह आपसे दूध माँग रहा है। आपने कसकर चपत जड़ दी। अब वह रोये या दूध माँगे? आपकी बला तो टल गई क्योकि अब वह केवल रोयगा, हाँ अगर कुछ हल्की चपत लगी है तो दूध भी माँगेगा पर आप चपत हल्की ही क्यों लगाने लगी। इसी प्रकार अपनी शान्ति के लिए माताएँ बच्चो को पीटती ह और धीरे धीरे उसे चिडचिडा बना देती हैं। वह हर बात पर रोना और जिद करना सीख जाता है। और जिन माताओ का यह कहना है कि बच्चा दूसरी तरह से समझ ही नहीं सकता तो यह मेरे विचार से तो बिल्कुल गलत ह। यदि बच्चे को प्यार और प्रसन्नता का आदी बना दिया जाय तो वह आपके सकेत मात्र को समझ सकता है।

अब जरा शारीरिक दण्ड का प्रतिफल देखिए। मार खाने से प्रभाव

---

* देखिए हमारी पुस्तक 'बालक के प्रति निर्दयता'।

पड़ता है और बच्चा सतर्क हो जाता है पर किस अर्थ में। वह शरारत करेगा किन्तु ध्यान रक्खेगा कि पकड़ में न आवे। छिप-छिप कर उसकी शरारत चलती रहेगी। क्या यह खुले आम शरारत करने से भी अधिक अहितकर नहीं है। यहीं से वह झूठ बोलना, धोखा देना, छल करना सीख जाता है। बार-बार पीटे जाने पर वह बेहया हो जाता है। फिर उसके लिए शारीरिक दण्ड कोई महत्व नहीं रखता। ऐसे भी बच्चे देखे गये हैं जो अपने मित्रों से कहते हैं "चलो यार देखा जायेगा। यदि घर वाले जान गये तो बहुत करेंगे दो चार तमाचे लगा देंगे।"

शारीरिक दण्ड देने की अपेक्षा शरारत की ओर देखिए जिससे आप क्रुद्ध होकर बच्चे को पीटते हैं। सच पूछा जाय तो बच्चे को पीटने का कोई अवसर ही नहीं आ सकता। वह शरारत करता है इसमें कुछ रहस्य है। पहले ही यह बताया जा चुका है कि शरारत करना उसका स्वाभाविक गुण है। इस स्वाभाविक गुण को आप दूसरी ओर मोड़ सकते हैं। बड़ी बुरी शरारत वह करता है किसी विशेष वातावरण में पड़कर। बहुधा यह देखा जाता है कि बच्चे अपनी जिद् पर अड़ जाते हैं और तभी पीटे जाते हैं। आप जिद् का अवसर ही मत दीजिए। तीन-चार वर्ष तक के बच्चों की जिद् ध्यान-परिवर्तन से भली भाँति छुड़ाई जा सकती है, किन्तु यदि आप प्रारम्भ में ही उसकी जिद् के साथ प्रतिस्पर्द्धा कर बैठते हैं तब तो यह बड़ा असम्भव है कि वह काबू में आ जाय।

बच्चों में प्रभुता-स्थापन की मनोवृत्ति पाई जाती है। इसी प्रवृत्ति के अनुसार वे दूसरों को दबाना चाहते हैं—चाहे रोकर, चाहे मार-पीट कर हम उनकी इसी प्रवृत्ति को मोड़ने का प्रयास करते हैं और उन्हें सिखलाते हैं कि वे किसी के साथ अनुचित व्यवहार न करें। पर यह कैसे सम्भव हो सकता है। हम स्वयं उनके साथ अनुचित व्यवहार करते हैं, उनको फटकारते हैं मारते-पीटते हैं। बालक माता-पिता के इन्हीं व्यवहारों का अनुकरण करता है। यह उसका स्वाभाविक गुण है। हर बालक अपने माता-पिता की नकल करता है। छोटी बच्चियाँ देखी गई हैं कि वे अपनी गुड़ियों को उसी प्रकार फटकारती हैं जैसे उनकी माताएँ उन्हें फटकारती हैं। खेल के मैदान में बालक अपने साथियों के

साथ वसा ही व्यवहार करता ह जसा उसके घरवाले उसके साथ करते ह। अत यदि हम चाहते है कि हमारा बच्चा औरो के साथ सुन्दर व्यव हार कर तो हमें भी उसके साथ सुन्दर व्यवहार करना चाहिए।

अधिक प्रतिभावान या शकाशील बालक शारीरिक दण्ड को बुरी तरह महसूस करता है और इससे उसके उस चिरसचित विश्वास और प्रेम का अन्त हो जाता ह जिसे उसने अपने हृदय में माता पिता के प्रति स्थापित किया था। फिर चाहे आप उसे लाख समझाइये कि आपने उसे उसके हित के लिए ही पीटा है अथवा पीटने से जितनी चोट बच्चे को नहीं लगी ह उससे अधिक आपके हृदय पर चोट लगी है सब व्यर्थ है। बालक यह सब न तो समझ ही सकता है और न मार खाकर समझना ही चाहेगा।

हतोत्साहित या दब्बू बच्चा को मारकर उन्ह भयभीत करके दबाया जा सकता ह पर इसका प्रभाव बहुत घातक होगा और वे आगे चलकर कायर और नैतिक दृष्टिकोण से हीन होंगे।

'मारखोर' बच्चों को मार खाते-खाते इतनी बेहयायी और मार सहने की आदत पड जाती है कि वे इसे कुछ समझते ही नहीं। कुछ एसे भी लडके देखे गये हैं जो हेड मास्टर के कमरे में बेंत खाने में अपना गौरव और बहादुरी समझते हैं।

छोटे बच्चा का सँभालना और घोडसवारी समान है। यदि आप घोडे की लगाम बिल्कुल कसी रखेंगे तो वह आगे न बढकर दो पैरो पर खडा होने का प्रयत्न करेगा जिससे आप तो घायल होंगे ही घोडे को भी घायल कर देंगे और यदि ढीली रखेंगे तो वह अपनी स्वाभाविक चाल पर चलेगा और आपके सकेतो का महत्व समझेगा। बच्चा को भी कोमल हाथो से सँभालिए—उनकी देखभाल कीजिए।

पर दण्ड भी दिया जा सकता है। इसके लिए शान्त चित्त की आवश्यकता है। बालको के नतिक अपराधों और झूठ बोलने, निर्भयता आदि को अपराध समझना ही नही चाहिए क्योंकि वह स्वय इन्हें जान-बूझ कर नहीं करता है वरन् जसा कि पुराण में कहा गया है ऐसी शरारतो में उसे मजा मिलता है और इसका दण्ड विधान नहीं उपचार कीजिए। सामाजिक

अपराधों जैसे, किसी लड़के का खिलौना छीन लेना, मार देना आदि के लिए भी उपचार वांछित ह बच्चो को पृथक कर दीजिए। हो सके तो थोडी देर के लिए खेल स्थगित कर दीजिए। दो चार बार ऐसा करने से वह इस प्रकार के अपराधों से मुक्त हो जायेगा। असामाजिक अपराधो के लिए आप अवश्य दण्ड दीजिए पर एक ही दण्ड दे सकते हैं। बच्चे को कुछ देर के लिए बिल्कुल अकेले रख दीजिए (ताला में बन्द मत कीजिये) जब बच्चा एकाकीपन महसूस करेगा तो वह पुन अपराध नही करेगा पर यह दण्ड भी बडे बच्चो को दिया जा सकता ह।

छोटे बच्चो को बेकार मत रहने दीजिए। वे जब तक जाग रहे हैं खेला करें—हँसा-बोला करें फिर अपराध करने का अवसर बहुत कम आयेगा।

धमका कर बच्चे में सुधार लाया जा सकता है पर धमकी मार-पीट की न हो। बार-बार आप उससे कहिए कि कल से आप उसके साथ नही खेलेंगे। आप अपनी धमकी का पालन कीजिये। बराबर धमकाना भी ठीक नही है।

वस्तु तोड देने पर बच्चों को दण्ड देना भारी भूल ह और यह प्रति-क्रिया मात्र है। इससे बच्चे का भविष्य ही बिगडेगा लाभ कुछ नही होगा। जो लोग अपने बच्चा को सामान तोड देने पर पीटते ह वे वास्तव मे बच्चे को शरारत करने की प्रेरणा देते ह। अत हमें ऐसे अवसरो पर सावधानी और धैय मे काम लेना चाहिए।

कुछ लोग बच्चो को इसलिए भी पीटते हैं कि वह घर की वस्तुएँ इधर-उधर कर देता ह। दूध बिल्ली को या टामी कुतिया को पिला देता ह। बिस्कुट अपने साथी को खिला देता है। ऐसे कार्यों पर फटकारना या पीटना नही चाहिए वरन् बच्चे को यह बता देना चाहिए कि वह बच्चे पूछकर कोई भी वस्तु ले सकता है।

साराश—यहाँ यह बता देना आवश्यक ह और अनेक माता-पिता को तो यह भली भाँति ज्ञान भी होगा कि हम बच्चों को बहुधा अपने क्रोध की शान्ति के लिए ही दण्ड देते ह। उनके अपराधो और हमारे दण्ड में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। हमने ऐसे माता पिता देखे ह

जो बच्चे की साधारण भूल पर इतना पीटते है कि वह बेहोश तक हो जाता है। यद्यपि ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं पर अपना गुस्सा उतारने के लिए लोग बच्चो को पीटते हैं यह तो निश्चय है। गुस्सा उतारने का तो बच्चा एक ऐसा साधन है कि एक पति से लड़कर पत्नी बच्चे पर गुस्सा उतारती ह और इसी प्रकार पत्नी से लड़ा हुआ पति बच्चे को मारकर अपने क्रोध की अग्नि को शान्त करता है। इन बच रे अबोध बालकों के साथ इस प्रकार का अत्याचार करना कहां तक उचित ह यह आप स्वय सोच सकते हैं। अत हमें चाहिए कि अपने क्रोध के क्षणा में बालको के साथ व्यवहार करने में सदा सतर्क रहें। उनके प्रेम को न ठुकरावें, उनको डाँटना फटकारना तो दूर रहा। यदि हम ऐसा नही करते हैं तो हम उनके बिगडने के उत्तरदायी ह।

अध्याय ९

कुछ अवांछित आदतें

बच्चो में कुछ अवांछित आदतें आ जाती है जिनसे माता पिता को बडी उलझन होती है, कम से कम उन माता-पिता को तो निश्चय रूप से उलझन होती है जो अपने बच्चे का पूरा ध्यान रखना चाहते है। उलझन उत्पन्न होना तो किसी सीमा तक ठीक है पर उसके दूर करने के लिए वे जो साधन अपनाते है वह स्वयं अवांछित होता है। उदाहरणार्थ उन आदतों को दूर करने के लिए वे अपनी शक्ति का प्रयोग करते है। बच्चे को मारते है फटकारते है, धिक्कारते है और यदि इस पर भी वह नही मानता (जैसा कि होता है) तो वे उसे पीटते है या दूसरे प्रकार से दण्ड देते हैं। उदाहरणार्थ अंगूठा चूसने वाले बच्चे के अंगूठे पर मिर्चा का लेप कर देते है और नाखून काटने वाले के दोनो हाथ पीछे करके बाँध देते है।

आज के वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की अवांछित आदतो का मूल कारण समझी जाती हैं बचपन की मनोभावात्मक समस्याएँ जो बच्चे की चेतनता के परे रहती है अथवा उन्हे कुछ-कुछ समझते हुए भी वह स्वयं स्पष्ट नही कर पाता है।

मुँह बनाना निरर्थक अंग-परिचालन, अंगूठा चूसना नाखून काटना आदि इन्ही अवांछित आदतो में सम्मिलित है और भावात्मक असन्तुष्टि के द्योतक है। इन्हें हम दण्ड द्वारा कुछ समय के लिए भले ही रोक दें पर जब तक बालकों की भावात्मक असन्तुष्टि को दूर नही किया जायेगा तब तक इसे रोकने का कोई अर्थ नही होगा और इसका प्रतिफल और भी भयावह हो सकता है। इन आदतो के पीछे जी जान से पड जाना ही व्यर्थ-सा है क्योंकि इनमें से अधिकांश स्वयं छूट जाती है—समय अवश्य लगता है।

अँगूठा चूसना—यह आदत बहुत छोटे बच्चों में बहुधा पाई जाती है। हमारे देश में तो बहुधा माताएँ ही बच्चे के मुँह में उसका अँगूठा डाल देती हैं और वह बड़े इतमिनान से चूसता है। इस प्रकार उसको एक काम में फँसाकर माता अपने सर की बला टाल देती है। बच्चे को इसमें स्तन-पान का आनन्द मिलता है। जब-जब उन्हें भूख लगती है अथवा स्तन-प्यास की इच्छा होती है तब-तब वे अँगूठा चूसने लगते है। किन्तु यदि अगूठा स्वच्छ है और नाखून साफ है तो घबराने की कोई बात नहीं है। इससे बच्चे का कोई अहित न होगा। कालान्तर में जब बच्चा अपनी भूख की तृप्ति दूसरे साधनों द्वारा स्वयं करने लगता है (स्वयं माँगकर खाने-पीने लगता है) तब वह इस आदत को छोड़ देता है। यदि चार वर्ष की अवस्था में बच्चा पुनः अँगूठा चूसना आरम्भ करता है तो समझ लीजिए कि उसे कोई मानसिक उलझन है। इसका कारण हो सकता है घर में नवशिशु का आगमन, गृह-परिवर्तन, बच्चे के अपने किसी साथी से विछोह आदि।

ऐसी अवस्था में धैर्य से काम लेना चाहिए। बच्चे को उसका महत्व समझाइये, घर में उसका स्थान बताइए और तब अप्रत्यक्ष रूप से यह बता दीजिए कि इस प्रकार की क्रिया (अँगूठा चूसना) बहुत छोटे बच्चे करते हैं। उसे तो दूसरे काम करने है और इसे छोड़ दे।

नाखून काटना—बहुधा बच्चे दाँत से नाखून काटा करते है (यह आदत बड़ों में भी पाई जाती है।) यहाँ हमें यह जान लेना आवश्यक है कि अँगूठा-चूसने की आदत सुरक्षा के अभाव में अथवा बचपन की सुखानुभूति की पुनः प्राप्ति के लिए चार-पाँच वर्ष के बच्चों में पड़ती है पर नाखून काटने की आदत का मूल हिंसात्मक है।

मनोवैज्ञानिकों ने इस आदत का मूल प्रयमाक्रमणात्मक प्रवृत्ति के प्रति बालक में उठती हुई लज्जा भावना को बताया है। अर्थात् बच्चे में प्रयमाक्रमणात्मक (aggressive) प्रवृत्ति रहती है जिससे वह स्वयं लज्जित होकर नाखून काटना शुरू कर देता है। बच्चे में प्रभुत्व की भावना होती है। वह इसमें असफल होने पर खीझकर नाखून काटने लगता है। यह उसके क्रोध और घृणा का प्रदर्शन हो सकता है और

प्रायश्चित का भी। बहुधा घृणा ही इसका मूल है। अत इस आदत से बच्चे को मुक्त करने के लिए हमें घृणा की भावना को उसके मस्तिष्क से निकालना होगा। हमें देखना होगा कि घृणा का कारण क्या है और तब उसे दूर कर सकते ह। बच्चा हमसे घृणा क्यो करने लगता ह, इसका सबसे बडा कारण हो सकता ह उसकी उपेक्षा। जब भी हम छोटे बच्चे को प्यार कर बडे बच्चे की कुछ भी उपेक्षा करेंगे तो वह हमसे घृणा करने लगेगा। अत हमें ऐमी स्थिति में सतक रहना चाहिए और बच्चे को यह भली भाँति अपने कार्यों से (वचन से भी) विश्वास दिला देना चाहिए कि आप उस छोटे बच्चे की अपेक्षा कर किसी प्रकार का प्यार नहीं करत हैं। इमी प्रकार बच्चे को शारीरिक दण्ड देना भी उनमें अपने प्रति घृणा-भावना को जगाना है। यदि किसी कारणवश आप बच्चे से नाराज भी हो जायें तो अपना क्रोध बहुत शीघ्र शान्त कर लें और बच्चे से बहुत देर तक नाराज न रहें। यदि आप बहुत देर तक उससे नाराज रहेंगे तो वह और कुछ चाहे करे या न करे नाखून काटने लगेगा और एक बार यह आदत सयोगवश पड गई तो फिर बढ़ती ही जायगी।

इस आदत को छडाने के लिए सबसे पहले तो यह कीजिए कि नाखून बढा न हो। दूसरी तरकीब है आप बच्चे को नाखून की सुन्दरता की ओर आकृष्ट कीजिए और उसे बताइए कि इस प्रकार नाखून काटकर वह नाखूनों की सुन्दरता को नष्ट करता है। पर ये सार साधन सभी लाभप्रद हो सकते ह जब आप उसके मूल कारणो को दूर करें जिनका उल्लेख ऊपर किया गया ह।

सोये-सोये पेशाब करना—यह आदत माताओ को बहुत कष्ट दती है। बडा होकर भी बच्चा सोये-सोये बिस्तरे पर पेशाब कर देता है, खुद भीग जाता ह और माता को भी भिगो देता है। इसका एक कारण यह हो मकता ह कि बच्चे में अपने छोटे भाई या बहन के प्रति ईर्ष्या ह और वह भी उसी की भाँति कार्य करके अपना बचपन जताकर माता-पिता का प्यार प्राप्त करना चाहता है। वह देखता ह कि छोटा बच्चा भी खाट पर ही सोये-सोये पेशाब करता ह और इसीलिए अधिक प्यार किया जाता ह। दूसरा कारण इस प्रकार का कोई रोग भी हो सकता है।

पहला कारण मुझे अशक्त ज्ञात होता है क्योंकि ऐसे भी बालक देखे गये हैं जो घर में अकेले रहते हैं, कोई दूसरा छोटा बच्चा नहीं उत्पन्न होता है फिर भी वे पेशाब किया करते हैं। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि बच्चा अपने बचपन की शृंखला को तोड़ना नहीं चाहता। जब वह छोटा था तो खाट पर ही पेशाब करता था। बड़ा हो जाने पर भी उसे इतना ज्ञान नहीं आ पाता कि खाट से उतर कर या माता की सहायता से उतर कर पेशाब करे। इसीलिए वह सोये-सोये पेशाब कर देता है। जिन बच्चों को दिन भर फटकारा जाता है, मारा जाता है वे रात में सोये सोये अधिक पेशाब करते हैं। सायंकाल उलझना में फंसा हुआ बच्चा निश्चय रूप से रात्रि में सोये-सोये पेशाब करेगा। इसके लिए सबसे बड़ा उपचार तो यह है कि दिन में भी आप उसे स्वयं पेशाब कराइए। इस बात का प्रयत्न कीजिए कि वह जब भी पेशाब करे तब आपकी सहायता से। धीरे धीरे बच्चे की आदत पड़ जायेगी और वह बिना आपकी सहायता के पेशाब करेगा ही नहीं। अन्धकार के कारण चाहते हुए भी बच्चा पेशाब करने के लिए नीचे नहीं उतरता है, अत घर में रात्रि में भी हल्का प्रकाश होना आवश्यक है। बच्चे को जांघिया अवश्य पहना कर सुलाइए और जब वह उसे भिगो देता है तो बदल कर दूसरी पहना दीजिए। इस प्रकार कुछ ही दिनों में आशा की जाती है कि वह आदत छोड़ देगा।

यदि इन सारे उपायों के पश्चात् भी बच्चा आदत नहीं छोड़ता तो समझ लीजिए कि उसे इस प्रकार का कोई रोग है जिसके लिए चिकित्सक से मिलिए।

अध्याय १०

कुछ सामान्य समस्याएँ

पिछले पृष्ठो में जिन आदतों पर प्रकाश डाला गया ह वे विशेष हं अथवा उतनी अलाभकर नहीं ह पर कुछ सामान्य आदतें है जो लगभग सभी वच्चा में पाई जाती हैं और साथ ही वडी भयावह भी होती हैं। घृणा, ईर्ष्या, भय तथा क्रोध सभी बच्चों में मिलता है और जब वे अपने इन मनोविकारो को प्रदर्शित करते हैं तो हमें घबराना नही चाहिए वरन् धय से काम लेना चाहिए।

क्रोध—बच्चो में क्रोध की मात्रा वा आधिक्य सवत्र देखने को मिलता ह। वह किसी वस्तु से खेल रहा हो। आप उसे छीन लें फिर देखिए यह कैसा भयानक रूप धर लेता है। हाथ-पैर पीटेगा, चिल्लायेगा उसका चेहरा तमतमा उठेगा। इसी प्रकार की अन्य अवस्थाओ में भी उसका क्रोध देखने को मिल सकता है। कुछ वच्चे तो इतना क्रोधित हो जाते ह कि वे अपना सर दीवार से टकराने लगते ह। खूब ऊधम मचाते ह। आखिर इसका उपचार क्या है ?

यह निश्चय रूप स समझ लें कि वच्चे की आवश्यकता की अपूर्ति अथवा उसकी इच्छा के विरुद्ध किये गये काय ही उसे क्रोधित बनाने के कारण है। वह वस्तुओ को अपने अधिकार में करना चाहता है। आप वस्तुओ की सुरक्षा के ध्यान से उससे छीनते ह। वह क्रोधित हो उठता ह। अच्छा होता आप ऐसी समस्त वस्तुओ को बच्चे की पहुँच से दूर रक्खें। यदि सयोगवश उसे कोई वस्तु मिल भी गई तो आप कोई दूसरी वस्तु देकर उसे बहला लीजिए।

बच्चा हर बात में 'नही' कहना सीख जाता है। हम लोग ही उसे यह शब्द सिखलाते हैं। आपने कोई बात कही और उसने कह दिया नही। आप अपनी जिद् पर अड जाते हैं और वच्चा भी जिद् करता

है। इस प्रकार वह 'नही' पर जोर देने लगता है। यही 'नहीं' कभी-कभी बच्चे के क्रोध का कारण बनता है। अतः हमें इससे सतर्क रहना चाहिए।

एक साल का बच्चा जो उचित रीति से पाला जा रहा है यद्यपि नही रो-पीट सकता है। यदि वह क्रोधित होता है तो समझ लें कि कोई ऐसी वस्तु की उसे आवश्यकता है जिसे वह नही पा रहा है। सम्भव है माता ने उसे बहुत दूर मे छोड दिया है। बच्चे स्वतन्त्रता और शुद्ध वायु के लिए भी चिल्लाते हैं और इनके अभाव में ऊधम मचाते हैं क्रोधित होते है।

उस समय तो हमारी समस्या और विकट हो जाती है जब बच्चा बोल नही पाता। वह क्या चाहता है हम यही नहीं समझ पाते और बच्चे की ऊधम अनवरत गति मे बढ़ती जाती है। वह चीखता, चिल्लाता है हाथ-पैर पीटता है, सर पटकता है और जब हमारे लाख प्रयत्न पर भी चुप नही होता तो हम भी उसे पीटने लगते हैं। एक तो वह पहले से ही घबराया था हमने उसे और भी घबरा दिया। हमें ऐसी स्थिति में अपनी दुर्बलता और बालक की विवशता दोनो का ध्यान रखना होगा। ध्यान दें कि उसकी क्या आवश्यकता हो सकती है। वह क्या चाह रहा है, यह पता लगाइए और जब दो-चार बार आप अपने प्रयास में सफल हो जायेंगे फिर तो आप पहले ही उसकी आवश्यकताओं को समझ जायेंगे।

एक वह अवस्था भी आती है जब हमारी और बच्चे की इच्छाओं में पूर्णतया विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है। जब किसी प्रकार की सुलह हो ही नही सकती। उदाहरणार्थ बच्चा खुली हुई दावात लेना चाहता है वह भी बिस्तर पर बैठे-बैठे। हम जानते हैं कि स्याही गिर जायेगी और बिस्तरा खराब हो जायेगा। ऐसी स्थिति में सुलह कब हो सकता है। बच्चा अपनी जिद नहीं छोड सकता और हम बिस्तरा खराब करना नही बर्दाश्त कर सकते। पहले तो बच्चे का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करके उसे बहलाने का प्रयास किया जाय और आकर्षक से आकर्षक वस्तुओ को उसके सम्मुख लाकर उसे उनकी ओर आकर्षित करना चाहिए और यदि वह नहीं ही मानता है तो ऐसी अवस्था में बिना उसे कुछ कठोर शब्द कहे या फटकारे उठाकर उसके कमरे में कर देना चाहिए और

बता देना चाहिए कि वह जब तब प्रसन्न नही हो जायेगा बाहर नही आ पायेगा। यदि वह बिल्कुल ही आपे से बाहर हो गया है तो बाहर लेकर चले जाइए। चाहे बच्चा काबू में आवे या न आवे पर आप अपना क्रोध मत जताइए अन्यथा इसी प्रकार की घटना वह बराबर किया करेगा। यह तो निश्चय है कि बच्चा शीघ्र या देर में अपनी जिद् भूल जायेगा पर यदि आपने उसे मार दिया या फटकारा तो उसकी आदत बढती जायगी।

कभी-कभी कुछ बालक इतने दुराग्रही और अपनी इच्छा पर जान दे देने वाले होते है कि उनको सँभालना सचमुच कठिन हो जाता है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए जान लडा देने की प्रवृत्ति है तो बहुत सुन्दर और इसका दूसरे शुभ कार्यों में प्रयोग करके कोई महान् बन सकता है किन्तु साथ ही अशुभ कार्यो में इससे बहुत बडी क्षति भी पहुँच सकती है। अत ऐसे बालको की देख रेख बहुत सावधानी से करना चाहिए हमारा उद्देश्य यही है कि हम बच्चे को शिक्षा दें और निश्चय रूप से उसे ऐसा बनावें कि वह मनमाना ढग से कोई काय न करे। अत हमें बच्चे में विवेक उत्पन्न करना होगा जो धीरे-धीरे आयु के साथ आयेगा। हमें धैर्य रखना होगा। सुन्दर क्या है इसका स्वय उदाहरण बनना होगा। तब बच्चा भी हमारी नकल करके सुन्दर बनेगा।

झिझक—कुछ बच्चे हर बात में झिझक दिखलाते हैं लजाते है। इनके विरुद्ध कुछ बहुत बेधडक होते हैं और आत्मप्रदशन के लिए व्याकुल हो उठते हैं।

झिझक मिटाने के लिए सबसे बडा साधन तो यह है कि बच्चे को पहले उसकी आयु के किसी एक लडके के साथ खेलने दीजिए। फिर दो-चार लडका में भेजिए। कुछ लोगों का यह विचार है कि स्कूल में जाने के बाद बच्चा की झिझक स्वय छूट जाती है पर बात ऐसी नही है। वहाँ जाकर तो ऐसे बच्चे हतोत्साहित हो जाते है और उनमें दूसरे प्रकार के विकार भी उत्पन्न हो जाते है।

बालको में झिझक आती कहाँ से है, यह ठीक-ठीक समझ कर ही

हम उसे दूर कर सकते हैं। बच्चा घर में झिझक नही दिखाता है (आत्म प्रदर्शन भी नही करता है) पर किसी आगन्तुक के आते ही चुप हो जाता है, छिप जाता है। अपरिचित के प्रति ही उसकी झिझक है। कारण यह है कि बच्चा अपने में कुछ कमी महसूस करता है। अपनी इसी कमी को वह छिपाना चाहता है। वह यह सोच नहीं पाता कि आगन्तुक के सम्मुख क्या कहे कैसे कहे और कैसे आये। इसीलिए वह दूर ही रहना चाहता है। कुछ लोग बरबस बच्चों को आगन्तुकों के सम्मुख लाते है। ऐसा करके वे उसकी झेंप मिटाना चाहते हैं पर वास्तविकता यह है कि इससे उसकी झिझक और बढ़ जाती है।

आगन्तुकों के सम्मुख बच्चे का लाने के पूर्व हमें बहुत से काय करने है। पहले हम बच्चा को घर वालो से ही जब वे बाहर आवें तो उचित व्यवहार करने की शिक्षा दें और जब वे सीखने लगें तो उनका उस शिष्टता की प्रशसा करें। कभी-कभी पड़ोसी बच्चों को बुलाइए। दावत देकर बुलाइए तो और सुन्दर हो। ये पड़ोसी बच्चे आपके बच्चे के परिचित हो और उनमें एक-आध अपरिचित बच्चे भी हों। अपरिचित बच्चों के अभिभावक भी साथ ही होंगे। इस आयोजन पर कुछ ऐसे आकर्षक खिलौने रखिए कि बच्चे का मन उधर ही लगा रहे और उसे झिझक का अवसर ही न मिले। अपरिचित बच्चों से परिचय करते समय बच्चा नहीं झिझकेगा। इसी समय उनके अभिभावकों से भी बच्चे का परिचय कराइए। इसी प्रकार के दो-एक अवसर पड़ने पर बच्चे की झिझक छूट जायेगी।

कुछ लोगों ने झिझक छुड़ाने की एक दूसरी सरल विधि यह निकाली है कि वे बच्चों को सौदा लाना भेजते है। बच्चे को बता देते है कि इस प्रकार दूकानदार से कहना। इस विधि द्वारा उन्हें सफलता भी मिली है।

आत्म प्रदर्शन—बहुधा आत्म प्रदर्शन करने वाले बच्चे हर समय अपने बड़ों के सम्मुख बेचैन देखे जाते हैं। वे चाहते हैं कि हम बड़ों को प्रभावित करें। उन्हें प्रभावित करने का उचित मार्ग तो ज्ञात रहता नही है। अत अनुचित या उचित किसी भी उपाय द्वारा वे अपने

बच्चे को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। बस यही उनका उद्देश्य रहता है। आखिर ऐसा क्यों होता है ? इसका एक मात्र कारण यह है कि जब हम बच्चों को उपेक्षित कर देते हैं तो उन्हें आत्म प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। बहुधा यह देखा जाता है कि अड़ोस पड़ोस की स्त्रियों के आ जाने पर माता तो उनके साथ गप्पें लड़ाने लगती है और बेचारा बच्चा इधर-उधर मारा-मारा फिरता है। माता के पास आता है तो वह बातों में खलल न पड़ने के कारण भगा देती है और यहाँ से हट जाने पर उसको उपयुक्त कोई वस्तु नहीं मिलती जिससे वह अपना जी बहलाए। अतः विवश होकर वह कुछ ऐसे कार्य करना चाहता है जिससे लोग (विशेषतया माता) उसकी ओर आकृष्ट हों। इसी आकर्षण के लिये वह रोता है, चिल्लाता है, माता के पास आकर अपनी बेसर-पैर की बातें छेड़ता है और इसी प्रकार के अनेक कार्य करता है। आगन्तुकों के आते ही बच्चा अपने खिलौनों की तारीफ का पुल बाँध देता है। अपनी तारीफ भी बड़े गर्व से करता है। ये सारे आत्म-प्रदर्शनात्मक कार्य के मूल में उपरोक्त कारण है। अतः बच्चों को इससे बचाने के लिये हमें यह ध्यान रखना होगा कि कभी भी वे उपेक्षित न होने पावें। यदि हम अपने आगन्तुकों की आवभगत में लगे हैं तो हमें चाहिये कि बच्चे को भी अकेलापन न महसूस होने दें। उसे भी अपने साथ रखकर और बीच-बीच में उनके मतलब की भी बातें छेड़कर उन्हें सदा अपने में व्यस्त रखना चाहिये। यदि किसी कारण-वश आप बच्चे को अपने आगन्तुकों की आवभगत के समय साथ नहीं रख सकते तो उसके खेल मनोरंजन आदि की ऐसी व्यवस्था कीजिए कि वह उसी में व्यस्त रहे।

रात्रि में चौंकना—कुछ बच्चे रात्रि में चौंक पड़ते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वे बच्चे जो माता पिता के पास रहें न चौंकें। सौभाग्यवश हमारे देश में छोटे बच्चों को अपने पास ही या साथ ही सुलाया जाता है। अतः हमारी समस्याएँ काफी सरल हैं। विदेशों में बच्चों के कमरे अलग होते हैं और जब बच्चे डर कर चिल्लाने लगते हैं तब माता-पिता रक्षार्थ पहुँचते हैं। जो बच्चे रात्रि में सोये-सोये चौंक पड़ते

है अथवा डर के मारे चिल्लाने लगते हैं वे वास्त
के कारण ऐसा करते हैं। दिन की किसी भयावह घटना की स्मृति
अथवा उससे स्वप्न ही उन्हें रात्रि में भयभीत कर देता है। अतः
हमें यह सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि वे दिन में कोई ऐसा दृश्य
न देखने या सुनने पावें जिससे भय का संचार हो। बच्चों को
दिन में तो भूत-प्रेत की कहानियों में बड़ा आनन्द आता है और ऐसी
भयावनी कहानियाँ ही प्रिय लगती हैं पर वही कहानियाँ जब उनकी
या कल्पना के माध्यम द्वारा रात्रि में पुनः सामने आती हैं तो भय का कारण
बनती हैं। अतः बच्चों को ऐसी कहानियों से दूर ही रखना चाहिए
चाहे ही उनमें कितना आकर्षण क्यों न हो। मोटर, रेल आदि दुर्घटनाओं
से भी बच्चों को सूचित नहीं करना चाहिये। उन समस्त वस्तुओं से
बच्चों को दूर रखना ही श्रेयस्कर है जिससे भय उत्पन्न होने की आशंका
हो।

माताएँ तो बच्चों को भय दिखलाकर सुलाने का व्यवहार करती
हैं। यह अत्यन्त हानिप्रद है। जो बच्चे "हौवा आया" कह कर डरा कर
सुलाये जाते हैं वे रात्रि में डरें न तो क्या करें। ? अतः बच्चों को इस
प्रकार डरा कर कभी भी नहीं सुलाना चाहिये।

भयावह चित्र भी बच्चों को नहीं दिखाना चाहिए। बच्चों को
सिनेमा दिखाना इस दृष्टिकोण से तो बहुत ही हानिप्रद है। कई ऐसे
चित्र बच्चों के हृदय पर आतंक, विप्लव, उपद्रव आदि की छाप डाल
सकता है जिससे बच्चे रात में डर सकते हैं।

रात्रि में यदि बच्चे जागते हुए सोते हैं तो वे ज्योंही बुलावें उन्हें
समय उत्तर दें जिससे उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो जाय कि किसी भी आवश्य-
कता के समय आप तुरंत पहुँच सकते हैं।

रात्रि में जागना—कुछ बच्चे रात्रि में सोते-सोते जाग उठते हैं और
इस प्रकार कई बार परेशान करते हैं। इस जगने के कई कारण हो
सकते हैं। सबसे पहला कारण तो हो सकता है बच्चे को टॉनसिल के
जिससे उसे जुकाम हो गया हो। जुकाम में बच्चे को सर दर्द हो जाता
है, नाक से साँस लेने में कठिनाई पड़ती है। इन कारणों से वह

असामान्य स्थिति में आ जाता है और जाग पड़ता है। कभी-कभी मुह से साँस लेना भी रात्रि-जागरण का कारण बनता है। बच्चो को नाक से साँस लेने की शिक्षा देनी चाहिये।

कुछ लोग सोने के पूर्व बच्चे को रुला देते हैं। मार कर या डाँट-डपट कर ऐसे बालक सहसा रात में जग पड़ते हैं। अतः बच्चा को मारपीट कर या डाँट डपट कर कदापि नही सुलाना चाहिये। इसके पूर्व ही उन्हे शान्त कर लेना चाहिये। कुछ बच्चे अकेले सोना चाहते हैं और यदि उनके साथ कोई सो जाता है तो वे जग जाते है। बच्चा को जिस प्रकार भी सोने में पूर्ण सुविधा मिले वैसी व्यवस्था करनी चाहिये।

कभी-कभी छोटे बच्चे की ईर्ष्या से बड़ा बच्चा रात में जग जाता है। वह जानता है कि छोटा बच्चा माँ के पास सो रहा है और वह स्वयं अकेला है। पेट की गड़बड़ी, भूख आदि भी जागरण के कारण हो सकते हैं।

अध्याय ११

भोजन और भोजन करने की कठिनाइयाँ

भोजन और भोजन की कठिनाइयाँ—बच्चो के भोजन के विषय में माता पिता को अधिक सावधान रहना चाहिए। आज के युग में माताएँ दादी की अपेक्षा इस मामले में अधिक पटु होती हैं। कारण यह है कि भोजन के विषय में काफी अन्वेषण अब तक हो चुके हैं और इनकी ख्याति भी बहुत अधिक बढ़ गई है। इससे प्रायः प्रत्येक माता को सतुलित भोजन का ज्ञान हो गया है। कुछ माताएँ तो इतना तक जानती हैं कि अमुक भोजन में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन अथवा विटामिन की अमुक मात्रा है और इनके खाने से अमुक अभाव विशेष दूर किया जा सकता है। यदि इस प्रकार की जानकारी माता को नहीं रहती है तो बच्चे के स्वास्थ्य के विषय में सदैव एक आशंका बनी रहती है। माता के अज्ञान में बच्चा का बहुत बडी हानि उठानी पड जाती है और कभी-कभी तो इस हानि का आजीवन अनुभव करना पडता है। उदाहरणार्थ बच्चे में किसी तत्व विशेष के अभाव से उसके नेत्र छोटे होते गए और थोडे ही दिनों के पश्चात् चक्षुशक्ति भी मन्द होती गई तो शीघ्र ही नेत्र-ज्योति समाप्त हो सकती है। कुशल माता इस रोग को प्रारम्भ में ही ताड जाती है और इसे दूर करने की नाना विधियों का प्रयोग करती है।

यदि कोई बच्चा गाजर या टमाटर नहीं खाता है तो निस्सन्देह उसमें विटामिन की कमी होगी। ऐसा होने पर माता को इसकी चिन्ता होगी और वह चिड़चिड़ी हो जायगी। उधर बच्चे की अनिच्छा जिद का स्वरूप ग्रहण कर लेगी और वह सदा अपना [illegible] ने में अस्वीकार करेगा। यदि उसके इस अस्वीकार पर म[illegible] है कि 'प[illegible] तो अमुक चीज देंगे' तो उसकी अस्वी[illegible] और [illegible]

जायेगी तथा बच्चे के हक में यह और भी बुरा होगा। उसकी आदत खराब हो जावेगी और सदा ही खाने के पश्चात् 'मिष्ठान्न' अथवा अन्य वस्तु चाहेगा। अत: इस बात से सावधान रहना चाहिये कि बच्चे में इस प्रकार की प्रवृत्ति का आविर्भाव न हो। यदि माता को यह ज्ञात है कि बच्चा अमुक भोजन नहीं खाता है तब चुपके से उसे हटा देना चाहिये और बाद में उसी भोजन में थोड़ा सा परिवर्तन करके उसके पास लाना चाहिये। वह बिना किसी हिचकिचाहट के खा लेगा। परिवार का भोजन बनाते समय रसोइया को चाहिये कि वह भोजन का मूल्य समझकर भोजन बनावे। साथ ही भोजन करते समय ऐसा वातावरण न समुपस्थित कर दे कि भोजन करने वाला अप्रसन्न रहे अपितु एक आनन्ददायक और उल्लसित स्थिति पैदा करनी चाहिये कि खाते समय सभी प्रसन्न रहें और जो कुछ खायें उत्साह से साथ खायें।

कुछ बच्चे स्वभावत ऐसे होते हैं जो प्राय: भोजन के समय अकस्मात् एक बखेड़ा खड़ा कर देते हैं। वयस्कों की भाँति वे शान्तिपूर्वक भोजन का आनन्द नहीं उठाना चाहते। मानो उनके लिए जीवन भागा जा रहा है। इसलिए वे चेष्टा करते हैं कि जितना हो सके जीवन से आनन्द लिया जाय। उनकी ऐसी आदत होती है कि खेल खेलते समय भी वे कुछ न कुछ खाया करते हैं। परन्तु यह अनुचित है। भोजन के समय सभी को उल्लसित होना चाहिये और बच्चा के लिए भी प्रयत्न करना चाहिये कि वे भी प्रसन्न रहें। उनको बात करने का भी अवसर देना चाहिये जिसमें वे दिन की सारी बातें कह डालें। बच्चे सादा भोजन चाहते हैं और यह भी पसन्द करते हैं कि स्वाद परिवर्तित होता रहे। वे तीखा स्वाद नहीं पसन्द करते हैं। खाने की तयारी में अधिक समय लगने पर वे घबड़ा जाते हैं। अत उन्हें जितना शीघ्र हो सके भोजन देना चाहिये। साथ ही वह अच्छी तरह पका हुआ आकर्षक और स्वादिष्ट होना चाहिए। टमाटर, सलाद आदि ऐसी सब्जियाँ हैं जो बच्चा के लिए आकर्षक और स्वादिष्ट हैं और इन्हें शीघ्र तैयार भी किया जा सकता है तथा विटामिन के दृष्टिकोण से भी ये श्रेयस्कर होती हैं।

कुशल माता को बच्चे के सतुलित भोजन पर ध्यान देना चाहिये। यदि बच्चा मांसाहारी है तो उसे मांस, मछली या अण्डे का सेवन अवश्य ही कराना चाहिये। इससे प्रोटीन और चर्बी की आवश्यकता पूर्ण हो जायेगी। शाकाहारी बच्चे के लिए दूध और अन्यान्य फलों का प्रबंध करना चाहिये। दूध की एक निश्चित मात्रा बच्चे की प्रोटीन-आवश्यकता दूर कर सकती है। दूध के साथ विभिन्न प्रकार के फल भी बच्चे को खिलाने चाहियें। यदि बालक को केवल एक ही फल दिया जाता है और वह इसे नहीं चाहता है तो उसे दूसरा फल देना चाहिये तथा इसमें किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं दिखानी चाहिये। इसी प्रकार कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, तेल आदि आवश्यक तत्वों की कमी पर भी देना चाहिये। विटामिन का प्रयोग भी आवश्यक होता है। इन सभी वस्तुओं के उपयोग के समय बच्चे की इच्छा का ध्यान रखना चाहिये। किसी ऐसी वस्तु को उसे नहीं खिलाना चाहिये जिसे वह नहीं चाहता हो।

भोजनालय में भोजन—जब बच्चे की आयु बहुत कम हो, उस समय उसे भोजनालय में ही भोजन कराना ठीक पड़ता है। कारण यह कि बच्चा खाना खाते समय खाने का अधिक अंश फर्श पर गिराता है और कभी तो थाली ही उलट देता है। बच्चे की यह क्रिया भोजनालय में होने पर उसे साफ किया जा सकता है पर शयनगृह या दूसरे कमरे में ऐसा होना भद्दा होता है और उसे साफ करने में कठिनाई भी उठानी पड़ती है। किन्तु भोजनालय में बच्चे को भोजन परोसने में असावधानी नहीं बरतनी चाहिए। साफ-सुथरी थाली में सजा कर भोजन रखने से आकर्षक-सा प्रतीत होता है और बच्चा रुचि से भोजन भी करता है। भोजन परसने में सावधान रहना चाहिये। यह नहीं सोचना चाहिये कि 'चलो कुछ भी परोस दिया गया, बच्चे के लिए जो है'। भोजन के प्रति प्रथम पाँच वर्षीय जीवन में ही उनकी धारणा स्थिर होती है। यदि भोजन प्रारम्भ में ही बच्चे को आकर्षक नहीं लगा तो वह उसके प्रति उदासीन हो जाता है। ऐसे बच्चे खास सामग्रियों के घर में रहने पर भी न सतुलित भोजन प्राप्त कर पाते हैं और न उनका स्वास्थ्य ही

सुधरता ह। शशवकाल में ही बच्चे को भोजन की ओर विशेष झुकाना चाहिये। भोजन परोसने की विधि स्वच्छता पूण हो और खाते समय आनन्द और प्रसन्नता का वातावरण होना चाहिये।

भोजन क समय छोटे नच्चे—बहुधा शिशु-पालन की पुस्तकों में अपने परिवार के साथ भोजन करने का निर्देश रहता है। यह बहुत प्रारम्भिक अवस्था में ही प्रारम्भ कर देना चाहिए जब बच्चा अय लोगो से भिन्न भोजन करता हो। बच्चे का भोजन अलग ही बनना चाहिए। यद्यपि ज्यो-ज्यो वह बढता है त्यो-त्यो उसके भोजन को तैयार करने में कठिनाई होती है, परन्तु गाता को इससे घबराहट नहीं अनुभव करना चाहिए अपितु इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि बच्चे को शीघ्र भोजन तयार मिल जाय और उसे भोजन के पश्चात् आराम मिल सके। बच्चो को बिना छेड-छाड के उन्हें भोजन करने देना चाहिए और भोजनोप रान्त मीठी निद्रा का उपभोग भी करने दना चाहिए। इस प्रकार माता बच्चे को शान्तिमयी बना सकती ह। किन्तु इसके लिए बच्चे अथवा माता का कोई सहायक अवश्य होना चाहिए। जब बच्चा इस योग्य हो जाय कि वह परिवार के अय सदस्यो के लिए बना हुआ भोजन ही करे तो उसें सभी लोगों के साथ खिलाना चाहिए। इससे वह एक प्रकार का आनन्द अनुभव करेगा। वह अकेले में माता के साथ खाना नहीं पसन्द करेगा और उस समय भी नहीं खाना चाहेगा जबकि माता काम के बोझ से दबी रहती ह। इसी दशा में वह अस्थिर दिमाग का होता है। उसे भोजन में रुचि नही आती ह और न यह भीड-भाड़ ही पसन्द करता ह। यदि इसी समय हम उस खाना दे दें और खान के लिए भी विवश करें तो निश्चय ही वह क्रोधित हो जायेगा। भोजन की थाली उलट देगा। उसकी इस शरारत से चिढ़ कर यदि हम उसे पीट दें तो वह और बुरा सिद्ध होगा। अत प्रताडना के बजाय उसे फुसलाना चाहिए। फुसलाने से वह अधिकार में आ जायगा और पूववत आपके साथ खेलने-कूदने लगेगा।

परिवार के साथ बैठने से बच्चा अपने को पारिवारिक सदस्य समझने लगता ह। भोजन के समय कभी-कभी और लोगो के खाने की विधि में उसे आनन्द आता है और प्रसन्नता का अनुभव करता है। परिवार के वयस्का

की आदतें यह शीघ्र ही सीख सकता है। इसलिए यह ध्यान रखना चाहिए कि कहीं बच्चा ऐसी आदत न ग्रहण कर ले जो हानिकर हो। कभी-कभी जब बच्चे एक बार भोजन की थाली उलट देते हैं और कहीं इसका सुधार नहीं होता है तो वे बार-बार इस आदत को दुहराते ह, परन्तु ऐसे अवसर पर उनसे फुसलाकर काम निकालना चाहिए और जब विशेष प्रसन्न मुद्रा में हा तो अपना दुलार प्रदर्शित करते हुए उन्हें इस गल्ती का सस्मरण करा देना चाहिए और भविष्य में ऐसी गलती न करने की राय भी दे देनी चाहिए। माता को चाहिए कि वह बच्चे को नाश्ता करावे, आराम करने का सुझाव दे और जब वह आराम करन लगें तो उसे भोजन बनाने का काम प्रारम्भ कर देना चाहिए। इससे भोजन बिना किसी व्यवधान के बनाया जा सकेगा। वह स्थिति तो और भी उत्तम होती ह जब बालक का प्रत्यक काम नियमित ढग से होता है। इसमें माता ऐसा नियम बनाती है कि उसके भोजन तयार करन का समय निकल आता है। इसमे माता और बच्चा दोनों को आराम रहता है। न तो माता को ही कोई बाधा झेलनी पडती है और न बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट उठाना पडता ह।

अपने हाथों भोजन करने का ढग सीखना—जब बच्चा बहुत छोटा होता ह तो उस समय वह अपने हाथों भोजन नहीं कर सकता। परन्तु वह जब इतना बडा हो जाय कि अपना भोजन स्वय कर सके तो उसमें इसकी आदत डालनी चाहिए। ज्यो-ज्यो वह बढता जायगा त्यो-त्यों उसमें लोगो के साथ बैठने की इच्छा की अभिवृद्धि होती जायगी। यदि हम उस दशा में उसे अपने हाथा से खाना नहीं खाने देते तो उसकी आदत बुरी पड जायेगी और वह बडा होने पर भी अपने हाथों से खाना नहीं चाहेगा। अत इस बात का पहले ही ध्यान रखना चाहिए और उसे अपने हाथ खाने की लत लगानी चाहिए। प्राय देखा जाता है कि बच्चे १८ माह की आयु तक अपने हाथों खाना आरम्भ कर देते हैं। कभी-कभी इस अवधि में अन्तर आ जाता है। दो वर्ष की अवस्था में आकर कुछ अपने हाथ खाना शुरू करते हैं। उन्हें, जब तक उनकी स्वेच्छा न हो उनको अपने हाथों से बलपूर्वक नहीं खिलाना चाहिए। जब वे अपने

हाथो खाना चाहें तो रोकना भी नही चाहिए। जब वे अपने हाथों खा रहे हो तो उनकी अनावश्यक सहायता नही करनी चाहिए, पर जब व आपकी आवश्यकता समझें तब आप अवश्य उनकी मदद करें। यदि उनका भोजन मन्द गति से चल रहा ह तो आप शीघ्रता न मचाइये। उन्हें धीरे-धीरे खाने देना चाहिए।

बहुत से बच्चे खाते समय थाली से भोजन गिराते ह और तब तक नहीं उठते जब तक थाली का भोजन समाप्त न हो जाय। इस अवसर पर उन्ह खाने देना चाहिए और थाली चाटने में मना नही करना चाहिए। भोजन के गिरने पर ध्यान न देना ही ठीक होगा। इससे वह धीरे-धीरे सीख लगा और बाद में भोजन गिराना अपनी मूर्खता समझने लगेगा। पानी पीने के समय बच्चे को हल्का वतन देना चाहिए जिसे बच्चा सरलता से उठा सके। यदि सम्भव हो तो पानी आप ही पिला दें। रसोईघर में दूध ऐसे स्थान पर रखना चाहिए कि बच्चे उसे छू न सक। जब वह पीना चाहे तो अपने हाथो पिलाना ही उत्तम होगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि दूध भोजनोपरान्त ही पीना चाहिए। जब बच्चे अपने मुंह में भोजन का अश रख हों और उसी समय दूध पीना चाह तो ऐसा करना हानिकर होता है।

भोजन की कठिनाइयाँ—बच्चा अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भोजन अच्छी तरह करता ह अपनी थाली साफ कर देता है और फिर दूसरी ओर समुत्सुक दृष्टि स देखता है। दो और तीन वष की आयु के मध्य कभी-कभी ऐसे भी अवसर आते ह जब वह भोजन करने से अस्वीकार कर देता है। इस अस्वीकारात्मक प्रवृत्ति के कई कारण हो सकते ह। वह किसी अरुचि, दबाव अथवा आन्तरिक भावना को ठेस लगने मे भोजन लेना नही चाहता ह। ऐसे स्थल पर उनके न खाने से बडबडाना नही चाहिए और न व्यथ का वितण्डावाद ही रच देना चाहिए। दबाव दने पर उनकी इच्छा भडक जाती है और वे जिद्दी बन जाते ह। थोडी-थोडी बात पर चिढ़ जाते है। अत यहाँ प्यार के साथ फुसलाना ही अच्छा होता है। बच्चे के फुसलाव में आ जाने पर यह प्रफुल्लता और आनन्द का विषय होता ह कि भोजन क जब दूसर समय वह बिना हि प

के खाना खा ले। प्राय भोजन न करने का कारण उदर में कुछ खराबी या हल्का दद होता ह जसा कि हम सभी अनुभव करते ह। यदि बच्चा किसी समय खाना नही खाता तो यह उसके लिए अधिक अहितकर सिद्ध नही हो सकता अपितु इससे उसका मेदा साफ हो सकेगा।

जब बच्चा विमुक्षित रहता ह और खेलने के लिए समुत्सुक नहीं ह तब वह भोजन शीघ्र समाप्त करना नहीं चाहेगा। जब साथ के सभी लाग खाना खाकर उठ जायेंगे और वहाँ से चले जायगे तब वह भोजन शीघ्र समाप्त करके खेलने जाना चाहगा । सकी इस इच्छा में रोक नहीं लगाना चाहिए। वह बिना इच्छा मे लाख दबाब डालने पर भी भोजन करना नही चाहगा। यदि इसके लिए प्रयत्न किया जाय तो उसका क्रन्दन आरम्भ हो जायेगा। यहाँ तक कि वयस्को के साथ भी यही स्थिति देखी जाती है। जब बच्चे अपना भोजन रुन में किसी प्रकार की असमर्थता का अनुभव करें तो उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। हम बच्चो में ह्रास का प्रादुर्भाव नही चाहते पर यह मानना पडेगा कि हम में भी इसका कुछ न कुछ अश रहता है। इस ह्रास से अनुप्राणित होकर बच्चे कभी कभी अच्छा और स्वादिष्ट भोजन भी खाना नहीं चाहते । जब बच्चा भूखा रहता है ता वह अधिक भोजन चाहता है परन्तु उसे ऐसे अवसर पर थोडा भोजन दना ही उचित होता ह, फिर बाद में यदि वह चाहे तो एक बार और दे देना चाहिए। छोटी अवस्था में बच्चे जिस चीज को नही पसन्द करते हों उस स्मरण कर लेना चाहिए। एसा दखा जाता है कि बड़े होने पर व उन वस्तु का प्रयोग करने लगते हैं—जस जब ताजी सलाद नारगी आदि प्राप्य होती हैं तब कोई गाभी लेने नहीं आता पर उनके न मिलने पर इसी स काम निकाला जाता है और वह प्रिय भी हो जाती है।

गम्भीर भोजन की कठिनाइयाँ आन्तरिक मनमुटाव का चिह्न स्वरूप होती ह। यह परिवार में किसी छोटे शिशु की ईर्ष्या के कारण उद्भूत होती ह जब बच्चा अपनी माता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। ऐसे स्थल पर बच्चे का खाना अस्वीकार करना बिल्कुल ही ध्यान में नहीं लाना चाहिए और इस पर कुछ कहना ही नहीं चाहिए। यदि यह समस्या विकट समस्या बन गई ह तो बच्चे की ही आयु का उसका

साथी ढूढना चाहिए और उसके द्वारा इस आदत का निराकरण कराना चाहिए। बच्चे की भोजन की ओर नकारात्मक प्रवृति का सूक्ष्मतम निराकरण उसके समवयस्क द्वारा ही शीघ्रता से हो सकता है। यहाँ तक कि बराबर साथ न रहने वाला बच्चा जब अचानक बच्चे के खाते समय आ जायेगा तो इसका प्रभाव बच्चे पर ऐसा पडेगा कि वह खाना खाना शुरू कर देगा और वह वस्तु खाने में भी नही हिचकेगा जो सदैव नहीं खाता रहा है ।

वातावरण का परिवतन भी इस कठिनाई को दूर करने में सहायक होता है। किसी प्रकार अवकाश के दिन भी बच्चे अधिक भूख का अनुभव करते ह। यदि ये अवकाश भी बच्चे पर प्रभाव न दिखा सकें तो किसी मित्र या सम्बन्धी के घर जाना चाहिए जहाँ बच्चा प्रसन्न रह सके। दूसरे घर में रहन से और अन्य लोगो के सहवास में वह अपनी गलती छिपाना चाहेगा और वही करेगा जो सभी चाहेंगे।

भोजन की सभी कठिनाइयो में माता को कभी घबडाना नही चाहिए। अपितु सँभाल कर काय करना चाहिए। माताएँ जब बच्चो से चिन्तित रहने लगगी तो इसका प्रभाव बच्चो पर भी पडेगा और वे भी चिता करने लगेंगे। यदि हम उनकी मानसिक दुरूहताओ का पता नही लगा सकते है तो हमें उनके प्रति अगाध प्रेम और शान्ति प्रकट करना चाहिए।

उपसहार—जब भोजन हमारे सम्मुख हो तो कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन आदि का ध्यान छोडकर खाना प्रारम्भ करना चाहिए। उस समय यह विचार नही करना चाहिए कि यह भोजन बढ़ने के लिए है बल्कि यह सोचना चाहिए कि यह भोजन आनन्द के लिए ह। भोजन के समय प्रसन्न वातावरण का होना अत्यावश्यक होता ह। भोजन के समय खेल या किसी एसे समय की बातें शुरू करना चाहिए जो आनन्द उत्पन्न कर सकें। इस बात से सतर्क रहना चाहिए कि जब मुँह भोजन से भरा हो तो हँसना या बात करना बुरा होता ह। मुँह का भोजन समाप्त करके ही बोलना चाहिए। अधिक अश में माता पिता की आदतों का ही प्रभाव बच्चा पर पडता ह। अत बच्चों में अच्छी आदतो का समावेश करने के लिए अपने पर भी ध्यान देना चाहिए।

अध्याय १२

खिलौने तथा खेल

खिलौना के विषय में लोगो में दो मत है। पहले प्रकार के लोग, जो आदर्श मनोवृत्ति के पोषक हैं इस अनावश्यक विलासिता के नाम से सम्बोधित करते है और दूसरे प्रकार के लोगो की धारणा है कि बच्चे खिलौने की अनुपस्थिति में प्रसन्न नहीं रह सकते। किन्तु ये दोनों धारणाएँ सत्य से दूर जान पड़ती हैं और तथ्य इन दोनों के बीच में है। बच्चों के लिए खेल एक आवश्यक कार्य है। इससे शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की अभिवृद्धि होती है। यदि किसी बच्चे के खेल में प्रतिबन्ध लगा दिया जाय और उसका खेलना पूर्ण रूपेण स्थगित कर दिया जाय तो यह एक मनोवैज्ञानिक के दृष्टिकोण से अपना सारा आनन्द खो बैठेगा। खेल के अनेक उपक्रम हैं। हाकी, फुटबाल, वालीबाल, क्रिकेट कबड्डी, गुल्ली-डंडा, शतरंज, ताश आदि अनेकानेक घर के बाहर और अन्दर खेले जाने वाले खेल है जिन्हें लोग स्वेच्छा से पसन्द करते हैं और आनन्द उठाते हैं। खिलौना भी खेल का एक उपक्रम है। बच्चे खेल का आनन्द खिलौने से ही उठाते हैं। छोटे-छोटे हथियार जैसे खुर्पी, हथौड़ी, छेनी आदि भी उनके इस खेल में प्रयुक्त होते हैं। जब बच्चा का मिट्टी का घर बनाने लगता है तो घास, म लकड़ी के खम्भे बनते है, खुर्पी से उन्हें गाड़ा जाता है, घास फूस से उसकी छाजन होती है, मटाके के पानी से उसकी लिपाई होती है और तब कितना सुन्दर उनका घर बन जाता है। क्या कभी आपने देखा है? यदि नहीं तो देखने की चेष्टा कीजिये। जहाँ बाल-मण्डली जुट जाती है वहाँ बालू के भी घर तैयार हो जाते हैं और उनकी बनावट तो अच्छे-अच्छे वास्तुकला मर्मज्ञों को भी प्रतिहत कर देती है पर निगोड़ी प्रकृति उन्हें अधिक देर में खड़ा भी नहीं रहने देती। छोटी टोपी पा जाने पर कोई राजा बनता है तो कोई नवाब और कोई

गवनर। गुडिया और पालना पा कर तो बालिका माता का अभिनय करती है। छोटी सी छडी और किताब लेकर बालक गुरु जी का चित्र खीच दता ह और यदि उसे कही बेंत और हैट मिल गया तब तो वह चोरा का पता लगाने लगेगा और खासा दारोगा साहब बन जायेगा।

खिलौने की अनुपस्थिति में बच्चे विश्व में जिधर देखते हैं उधर ही सभी चीजें बडी दिखलाई देती ह। वे अपने को बडे-बडे शरीरधारियो के बीच में दखकर एक प्रकार का दुख अनुभव करते ह। पर खिलौने से उन्हें सन्तोष हो जाता है क्योकि इनका आकार छोटा ह। अब उन्ह यह अनुभव होता है कि वे ही सबसे छोटे नहीं हैं अपितु उनसे भी छोटी चीजें समार में ह। खिलौनो को बच्चे निर्जीव नही समझते बल्कि उन्हें जीवित जानते हैं। वह अपने छोटे परिवार में सबसे बडा होता ह और उस पर शासन करता ह। इस प्रकार खिलौने से बच्चे को एक प्रकार की शक्ति मिलती है। जब बालक अपने छोटे रेलगाडी के खिलौने का सचालन करता ह तो एक ही साथ वह गार्ड स्टेशन मास्टर और ड्राइवर तीनो का काय करता है और अपना स्थान उनकी अपेक्षा ऊँचा बना लेता ह। कारण यह ह कि उसकी गाडी न तो समय की सीमा में बँधी रहती ह और न उसका गन्तव्य स्थान ही निर्धारित रहता ह। उसकी दिशा भी वही होती है जो वह चाहता ह। बच्चे के खिलौने ही उसके शासन करने प्रेम करने पुचकारने आदि के उपक्रम हैं। इन्हीं से वह कभी माता बनता ह ता कभी पिता। वह कुत्ते के बच्चे या बकरी के बच्चे वाले खिलौने को ही जीवित समझता ह और उन्हें अपना प्यार जताता ह। कभी-कभी वे छोटे से पिल्ले या मेमने को देखते ह तो उन्हें पकडने दौडते हैं और अपना आन्तरिक प्यार दिखाते हैं। पर उनके काटने या चिल्लाने से घबडा से जाते ह। खिलौने से उन्हें इस बात का भय नहीं रहता।

खिलौने आनन्द और प्रसन्नता देने के अतिरिक्त मानसिक ज्ञान भी प्रदान करते हैं। बच्चे के छोटे बक्स वाले खिलौने उसे बक्स खोलने और बन्द करने की विधि बताते हैं। वह उनको खोलने और बन्द करने में सावधानी से काम लेता ह। उसका मस्तिष्क उसकी सरचना की ओर प्रेरित होता है। वह अपन छोटे बक्स और माता के बडे बक्स में तादात्म्य स्थापित

भरता है। रंग के डिब्बे, उसमें रंगाई के काम, नक्काशी के काम, कारी गरी के काम आदि उसके मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं और उसकी बुद्धि के विकास में सहायता प्रदान करते हैं। इस प्रकार खिलौनों का उपयोग आवश्यक है। किन्तु ध्यान रहे, खिलौनों की अपरिमित संख्या लाभ के बदले अपना उद्देश्य ही खो बैठती है। खिलौनों की संरचना ऐसी ही होनी चाहिए जो विश्वास का उद्भव कर सके। ऐसे खिलौने जिनको अच्छी तरह सुसज्जित तो किया गया रहता है पर उनकी आकृति आकार के अनुसार नहीं होती है, उनका बच्चों पर उपयुक्त प्रभाव नहीं पड़ता है। जब बच्चे की खिलौने की आवश्यकता बहुत सरलता से पूर्ण हो जाती है तब वे और अधिक चाहते हैं। ऐसी दशा में खिलौने उन्हें बहुत थोड़ा आनन्द दे सकते हैं और जब यह आनन्द समाप्त हो जाता है तब वे खिलौने को असावधानी से फेंक देते हैं और तोड़ डालते हैं। बुद्धिमान माता-पिता खिलौने में बहुत कम व्यय करते हैं। वे अपना धन व्यर्थ के खिलौनों को खरीदने में नहीं व्यय करना चाहते बल्कि उन्हीं को खरीदना और रखना चाहते हैं जिनका बच्चों की बुद्धि पर कुछ प्रभाव पड़ सके। कुछ बच्चे स्वभावतः ही किसी खिलौना विशेष को चाहते हैं। जैसे कोई बालिका गुड़िया और पालना बहुत ही पसन्द करेगी। एक बड़ा बच्चा तीन पहिए वाली साइकिल पर चढ़ना चाहेगा। इन खिलौनों का क्रय बराबर नहीं करना चाहिए। किसी विशेष समय मेला या प्रदर्शिनी में ये वस्तुएँ खरीदने में ठीक जँचती हैं। सुन्दर तो वह होता है जब कि बच्चा अपने बचाये पैसे से अपने पसन्द का खिलौना खरीदे। यह यह खिलौना अच्छी तरह रखेगा और इसका प्रभाव भी दूसरे लाए हुए खिलौने से कहीं अधिक पड़ेगा।

बच्चों को पके-पकाये खिलौने न देकर यदि खिलौने बनाने की सामग्रियाँ दे दी जायें तो बच्चे अधिक आनन्दित होंगे और उनके मस्तिष्क पर भी जोर पड़ेगा। उन्हें मिट्टी खुर्पी, कुदाली, फावड़ा, पानी स्नान का बर्तन आदि देकर कोई ऐसा स्थान बता देना चाहिए जहाँ वे अपनी इस क्रिया का प्रयोग कर सकें। अधिकतर यह क्रिया छोटे बाग में हो तो अच्छा हो। इस मामले में हमें बिल्कुल ही हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

हमें यह देखना चाहिए कि वे क्या कर रहे ह और उनका मस्तिष्क कहाँ तक जा रहा ह। कुछ बच्चे मिटटी से घृणा करते ह। उन्ह कीचड और गन्दे पानी को स्पश करने का भी जी नही करता ह। ऐसी दशा में उन्हें चमकीले बालू देना चाहिए। बालू द्वारा भी वे बालक पर्याप्त आनन्द उठा सकते ह। आपने सम्भवत कभी बालू को हाथ में लेकर अँगुलिया के बीच से उसके गिरने की स्थिति द्वारा उत्पन्न आनन्द का अनुभव किया होगा। कितना भला लगता है वह। बच्चे सुर्पी और मिटटी से विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाते ह, खुश होते ह और उन्हे रद्द कर देते हैं। कभी-कभी तो कुआँ का निर्माण करते ह। एक अच्छी, खासी ढेकली उसमें लगा देते हैं और लगते ह खेत की सिंचाई करने। तात्पय यह कि बच्चों को खिलौना स्वय बनाने में, बने-बनाये खिलौने द्वारा उद्भूत आनन्द से कही अधिक रस मिलता ह। यह आनन्द क्षणिक न होकर कुछ अधिक समय के लिए होता है और बच्चे इससे रचनात्मक प्रवृत्ति की ओर अभिप्रेत होते ह।

इसके अतिरिक्त पानी भी बच्चों के खेल का अच्छा साधन ह। वे पानी से अधिक आनन्द उठाते ह। परन्तु बहुत सी माताएँ ऐसी देखी जाती ह जो बच्चों को पानी के पास तक जाने से रोकती ह। इस समय मुझे अपने ही परिवार के एक बच्चे की करतूत स्मरण आती है। उसकी एसी आदत थी कि जब वह बाल्टी में भरा पानी देखता, चट वहाँ पहुँच जाता और अपना पूरा हाथ उसमें डालकर पानी को हिलाने लगता था। कभी-कभी किसी कपडे को उठाकर उसमें डाल देता था और उसे धोना आरम्भ कर देता था। यही नही कभी-कभी दो बाल्टिया को पास देखकर एक का पानी दूसरे में और दूसरे का पहले में करने लगता था। यह उसके आनन्द का उपक्रम था। ऐसे स्थल पर उन्हे रोकना नही चाहिए। रोकने का कारण अधिकतर यही होता ह कि माताएँ बच्चे को सर्दी लग जाने के भय से डरती हैं। इस भय का निराकरण करने के लिए कुन कुने पानी का प्रयोग करना चाहिए और बच्चा जब खेल ले तो उसे सूख कपडे से पोछ देना चाहिए। पानी में तरने वाली कागज की जहाज या दियासलाई का बक्स पानी से भरी बाल्टी में तैरा देन पर बच्चे बहुत

आनन्दित होते हैं। उन्हें पानी का यह खेल अधिक जँचता है और इसमें किसी हानि का भय भी नहीं होता है। जहाज को देखकर वे स्वयं बनाने की चेष्टा करते हैं। गर्मी के दिनों में जब अधिक गर्मी पड़ने लगे तो बच्चों को उनकी इच्छा से स्नान करने देना चाहिए।

घर के बाहर की क्रीड़ाएँ—यदि घर के पास कोई खेलने योग्य मैदान अथवा उपवन है तो बच्चे के लिए बहुत ही उपयोगी हो सकता है। बच्चे के लिए झूला डाला जा सकता है। यदि बगीचे में झूला डाला जाय तो वह पेड़ की डाल पर सरलतापूर्वक डाला जा सकता है। यदि बच्चा काफी छोटा है तो झूला अथवा पालना की व्यवस्था घर के भीतर भी हो सकती है। खूँटियों या दरवाजे की कीलों में रस्सियाँ बाँधकर झूले को लटकाया जा सकता है। इसे रात्रि के समय उतार भी लिया जा सकता है। चीड़ के तख्ते के बने बक्स, जो पंसारियों या दवाखाना में मिल सकते हैं, लेकर बच्चों के लिए खेल का एक साधन बनाया जा सकता है। बच्चे उसे रेलगाड़ी, मोटर गाड़ी, नाव आदि बना सकते हैं। रस्सी से बाँध कर भड़भड़ाहट करते हुए इधर-उधर खींच भी सकते हैं। यदि बच्चा को वाटिका के किसी एक कोने में टूटे फूटे तख्ते, ईंटें आदि दे दिए जायँ तो उनकी सहायता से वे अपना अच्छा कौशल दिखाते हैं। वाटिका को किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पड़ती है और बच्चों को भी मनमाना खेल खेलने की स्वतन्त्रता रहती है।

नगरों में रहने वाले बच्चे के लिए खेल का मैदान या वाटिका का होना साधारण काम नहीं है। उन्हें खेलने के लिए पार्क की ही शरण लेनी पड़ती है जहाँ आधुनिक खेल के उपक्रम रहते हैं। सी-सा, फिसलन वाली सीढ़ी आदि उन्हें वहाँ सुलभ हैं। घरों में भी अच्छे बढ़ई द्वारा इनका प्रबन्ध किया जा सकता है पर इसमें बहुत पैसा लग सकता है। नवीन ढंग के अनेक प्रसाधन निकले हैं जिन्हें घर के बाहर के खेलों में लिया जा सकता है। परन्तु इनमें उन्हीं का उल्लेख किया जा सकता है जो सर्व साधारण में सुलभ हों। ग्रामीण बच्चों के लिए मैदान और वाटिका का अभाव नहीं रहता। कबड्डी, आँख-मिचौनी, गुल्ली डंडा आदि अच्छे प्रसाधन बच्चों के लिए उपयुक्त हैं। पेड़ पर चढ़ना भी इस प्रकार का

खेल ही है जिसका उपयोग ग्रामीण बच्चे खूब करते हैं। नदी या तालाब में तैरने में भी वे दक्ष होते हैं, यद्यपि ये खेल खतरे से खाली नहीं हैं।

इन खेलों से बच्चों का लाभ यह होता है कि वे अपनी शक्ति का उपयोग अच्छी तरह कर पाते हैं। शक्ति के उपयोग से उनमें स्फूर्ति की तीव्रता आती है। उनमें भय और संकोच की मात्रा नहीं रह जाती और न मर्यादित में रहना ही नापसन्द करते हैं। उनका शारीरिक और मानसिक दोनों तरह का विकास होता है। खुली वायु और अत्यधिक प्रकाश भी उपलब्ध होता है।

घर के भीतर के खेल—घर के बाहर के खेलों को खेलने के पश्चात् बच्चे को घर के भीतर के अन्यान्य खेल खेलना चाहिए। बाहर के खेलों से बच्चे को शुद्ध और खुली वायु मिल जाती है, साथ ही भीतर के खेलों से बच्चा प्रसन्न रहता है। पानी और बालू की सहायता से कई खेल खेले जाते हैं। पानी के खेल का उल्लेख तो हमने पहले ही किया है। बालू द्वारा भी लड़के आनन्द उठाते हैं। समाचारपत्रों के मेज या फर्श पर फैले रहने पर बच्चे उन्हें उलटना-पुलटना शुरू कर देते हैं। अधिकतर बच्चों की रुचि रचनात्मक कार्यों में अधिक जाती है। वे घर में मिट्टी द्वारा ईंटें बनाना और उन्हें तेज धूप में सुखाना उन्हें खूब भाता है। इन पक्की ईंटों से कभी-कभी वे घर के किसी कोने में दूसरा घर बनाना शुरू कर देते हैं। उसके भीतर अपना काष्ठ का टूटा-फूटा बक्स बड़ी सावधानी से रखते हैं। उस छोटे से घर को काठ के तख्तों से छाकर ऐसा बना देते हैं कि कोई चोर उसके घर में घुस न जाये और उसका बक्स चुरा न ले जाय। उस घर में वे कभी-कभी हवा आने-जाने के लिए वातायान बनाते हुए देखे जाते हैं। इन सब बातों से उनकी बुद्धि बढ़ती है।

बच्चे लेई द्वारा कई प्रकार के खिलौने बनाना पसन्द करते हैं। ये खिलौने बहुत कोमल और टूटने वाले होते हैं। इस कारण उन्हें रखने में अधिक सावधानी रखनी पड़ती है। पर बच्चे इन्हें बना कर बिगाड़ने में भी उतना ही आनन्द अनुभव करते हैं। लेई व्यय नहीं होने पाती। बच्चे उन खिलौनों को बड़े चाव से खा भी जाते हैं। बहुत से बच्चे ऐसे

में से थोडा सा अश लेकर उसे चिडिया आदि कई रूपा में डालते है। जब वे तयार हो जाती ह तो तवे पर उन्ह पकने क लिए छोड दत है। पक जाने पर बडे आनन्द के साथ उन्हें खाते ह। बच्चो को इन कार्यों में प्रसन्नता होनी ह और उत्साह के साथ इन्ह करते है। माता पिता को एसे स्थलो पर इस बात के लिए सतक रहना चाहिए कि कोई उन्हें एमा शब्द न कह दे जिससे, उनके इस काय में व्यवधान पहुँचे।

कभी-कभी बच्चे रगीन कागज को मोडकर अनेक प्रकार की डिजाइनें बनाते ह। उन्हें मोड-माडकर कैची से काटने में आनन्द आता है। अत उन्हें एक प्रकार की ऐसी कैंची देनी चाहिए जो अधिक तेज न हो ताकि वह अपनी अँगुली ही न काट बठें। रगीन कागज भी दे देना चाहिए और इनके द्वारा भाँति भाँति की वस्तुए बनाने में उन्ह पूण स्वतन्त्र छोड देना चाहिए। बच्चे उज्ज्वल कागज पर अनेक चित्रकारी बनाकर विभिन्न रगों से उन्हें चित्रित करना भी पसन्द करते ह। उन्हें रग के डिब्बे, ब्रश आदि का अभाव नहीं होना चाहिए। बच्चे प्राय उन्ही वस्तुओ क निर्माण का यत्न करते हे जो दैनिक जीवन में प्रयुक्त होती हा और जब वे अपने कार्य में सफल होते हैं तो उनका आनन्द चरम बिन्दु पर पहुँच जाता ह। वे दौडे हुए माता के पास जाते हैं फिर पिता के पास और फिर अन्य पारिवारिक सदस्या के पास। जानते है क्यों? अपने हाथ की निर्मित वस्तु को दिखाकर सम्मान प्राप्ति के हेतु। यदि उसी समय कोई उसकी वस्तु को बुरा कह देता है तो उसका हृदय विक्षुब्ध हो उठेगा और उसका आनन्द समाप्त हो जायेगा। बच्चे चिपचिपा रगीन कागज को नाना रूपों में काटकर सफेद कागज पर चिपकाते हैं। कभी उन्हें अपने कमरे में लटकाते ह। कभी उसका अलबम तयार करते हैं। यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी जो पलने में रहते हैं, कागज से खलते हैं और प्रफुल्लित होते है। बच्चा में एक अवस्था आती है जब कि वे माता के कपडे काटने वाले सामानों की जाँच किया करते ह और उन्हें ध्यान से देखा करते है। इस अवस्था में उन्हें इस ओर प्रोत्साहित करने पर वे लग्न से काम करते हैं। यदि उन्हें कपडा सुई, सुई आदि कसीदा वाली सामग्रियाँ द दी जायें और उन्हें ढग भी बतलाया जाय तो वे बहुत आनन्द के साथ कसीदा करना

शुरू कर देते ह। इस ओर विशेष कर लडकियो की ही रुचि होती है। उन्हें ऊन आदि देकर स्वेटर बुनने का भी ढग सिखलाना चाहिए। यदि घर में सिलाई की मशीन है तो वे उसे चलाना बहुत पसन्द करती ह। कभी-कभी उन्हें मशीनो के चलाने की विधि भी बतानी चाहिए। पर ध्यान रहे यह कार्य उनकी अवस्था के अनुसार ही होना चाहिए। यदि बच्चे बहुत छोटे ह तो उन पर इन कार्यों के सिखलाने का प्रतिकूल प्रभाव पडेगा। वे प्रगति करना नही चाहेंगे और उसे एक दबाव का काय समझेंगे। अत जब बच्चो की अवस्था लगभग सात-आठ की हो या अधिक की हो तब उन्हें सिखलाने की ओर अभिप्रेत करना चाहिए। सिलाई का काम तो लडके-लडकियाँ दोनो को सिखलाना उत्तम होगा। सिखलाने का काम पुराने साफ धुले कपडे पर होना चाहिए।

कुछ बच्चे जाली-बुनना बहुत पसन्द करते ह। यदि उनकी प्रवृत्ति इस ओर हो तो उन्हें अवश्य यह काय सिखलाना चाहिए। बच्चो को वही काम और उसी समय सिखलाने की चेष्टा करनी चाहिए जिनमें उनकी विशेष रुचि हो। प्राय लोग बालको को सिलाई की विद्या सिखलाने के पक्ष में नहीं ह। पर यह उनकी भूल है। वे और नही तो अपनी आवश्यकता भर की चीजें तो तयार कर ही सकते ह। कभी-कभी बच्चे अच्छे-अच्छे फूल-पौदे लगाना पसन्द करते ह। आँगन के एक कोने में कोई पौदा लगाकर वे बहुत प्रसन्न हुआ करते ह। यद्यपि यह उनका कार्य वाटिका में भी होता ह पर वे अधिकतर आँगन में ही पौधो को लगाकर उन्हे हरा भरा देखना चाहते हैं। बच्चो की ऐसी रुचि पर उन्हे घर के बाहर वाटिका में ऐसा स्थान दे देना चाहिए जहाँ वे अपनी इच्छा पूरी कर सकें। उनमें पानी देने के लिए एक छोटा सा बतन भी दे देना चाहिए। उन्हे समय-समय पर गोडने के लिए खुर्पी चाहिए। इस प्रकार उनकी इच्छाओ की पूर्ति कर उन्हें सच्चा आनन्द दिया जा सकता ह।

इन कार्यों से उन्हें अपार आनन्द प्राप्त होता है और वे सतुष्ट होते ह। अपने इन कार्यों में उन्हें सहायता की भी आवश्यकता होती है पर सहायता देने में उनकी इच्छा का ध्यान रखना चाहिए। ऐसा न हो कि आप उस आनन्द को विनष्ट कर दें। उनका आनन्द उस समय समाप्त

हो जाता है जबकि कोई उनकी आलोचना कर देता है अथवा हँस देता है। ऐसा करने से उनकी क्रियात्मक प्रवृत्ति ही विनष्ट हो जाती है। उन्हें सावधानी से उनकी कमी दिखलानी चाहिए और सम्मान के साथ उनको आगे बढ़ाने के लिए उत्साहित करना चाहिए। इस अवस्था में उनकी रुचि को विशेष स्थान देना चाहिए। जिस ओर उनकी रुचि विशेष हो उसी ओर हमें उन्हें ले चलना चाहिए। पढ़ने की ओर जिस अवस्था में वे झुकें उसी समय अक्षर आदि सिखलाना चाहिए। ऐसा करने से उनकी प्रगति के अवसर बने रहते हैं।

व्यवहारकुशल माता-पिता बच्चों के लिए बरसात के दिनों में कुछ खिलौनों का प्रबन्ध कर देते हैं। जिस दिन दिन भर पानी बरसता रहे और बच्चे स्कूल न जा सकें उस दिन उन्हें अपने दिन को व्यतीत करने के लिए कुछ चित्र-निर्माण काम होने चाहिये। रंगों के डिब्बे, जाली बुनने की सुइयाँ, ऊन के लच्छे आदि उन्हें प्राप्त होने चाहिए जिससे अपने इस दिन को वे काम में ही बिता सकें। कारण कि बरसात के दिनों में ऐसे दिन बहुत आते हैं जब कि पानी देर तक बरसता रहता है और उस समय बच्चे अपने खेलने के कुछ साधन का रहना अधिक आवश्यक समझते हैं।

सान्त्वनात्मक पुरस्कार—जब बच्चे किसी कारण विक्षुब्ध अथवा उदास हो जायें उस समय उनमें प्रतियोगिता कराकर सान्त्वना प्रदान किया जा सकता है। यह उनकी खेल का एक बहुत अच्छा साधन है। उदाहरणार्थ, दो बच्चों का एक साथ ही किसी निश्चित दूरी की दौड़ करा दी जाय और यह भी कह दिया जाय कि जो पहले पहुँचेगा उस को फल दिया जायेगा। पहले पहुँचने वाला अपनी विजय समझेगा और दूसरा अपनी हार। परन्तु फल या पुरस्कार दोनों को मिलना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से विजित बच्चा अधिक पराजय नहीं समझेगा। इसी प्रकार के अन्य खेल खिलाकर उनका मनोरंजन किया जा सकता है।

गृह-निर्मित खिलौने—बच्चों को दुकान से खरीदे खिलौनों से अधिक आनन्द घर में बने खिलौनों से मिलता है। जब बच्चे भी इस कार्य में कितनी सहायता कर रहे हों अथवा कोई बड़ा बच्चा स्वयं निर्माण-कार्य में व्यस्त

हो तो उसे बहुत अधिक आनन्द प्राप्त होता है। जब कोई खिलौना बनाता है तो वहाँ कुछ कार्य न करने पर भी वह बच्चा शान्तिपूर्वक उसका निरीक्षण करता है और उसे इसी कार्य में अधिक खुशी होती है। घर के खिलौने बाजार के खिलौनें से अच्छे होते हैं क्योंकि ये बच्चो की इच्छानुसार निर्मित होते हैं। जब बच्चों को घर के बने खिलौने अधिक परिमाण में मिलते है तो वे उन्हें एक स्थान पर सजाकर रखते है। इस विचार से उनका खिलौनें वाला कमरा बडा और सुन्दर होना चाहिए। उस कमरे को सुन्दर रखने की प्रवृत्ति तो उनमें पहले से ही रहती है और इसमें अन्य लोगा द्वारा अभिवृद्धि भी की जा सकती है। यदि बच्चे खिलौनें से केवल खेल भर पाते हैं, उन्हें रखने और सुरक्षित रखने का अधिकार उन्हे नही है, तो उन्हें उतना आनन्द नही मिल सकता जितना कि रखने से मिलता।

बाजार के खिलौने—बाजार से खिलौना खरीदते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि खिलौना सुन्दर और बढिया होने के साथ-साथ टिकाऊ भी होना चाहिये। यदि खिलौना बहुत ही सुन्दर हो परन्तु शीघ्र ही टूट जाय तो यह बच्चा के लिए आनन्ददायक नही सिद्ध हो सकता। अत पहले ही सोच-समझ लेना चाहिये। खिलौना ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि बच्चे उन्हें बिल्कुल ही न चाहे। खिलौने सुन्दरता और टिकाऊपन दोना दृष्टिकोण से उत्तम होने चाहिए। यदि खिलौना शीघ्र टूट जाता है तो अपनी बनावट के अनुसार वह जोडा नही जा सकता। साधारण खिलौने किसी सीमा तक जोडे जा सकते है। तीन पहिए वाली साइकिल या गुडियों का पालना आदि अधिक पसे में मिलते है। इन्हे खरीदने में यह बात ध्यान रखना चाहिये कि ये सदा नए न हों। यदि पुराना खरीदा जाय तो कीमत भी कम होगी और टूटने का दुख भी नही रहेगा। पुराना खरीद कर नई रँगाई करा देनी चाहिए। इससे वह बच्चा के लिए नया ही जान पडेगा और पसे की बचत भी रहेगी। टूट जाने पर अधिक हानि भी नहीं उठानी पडेगी।

कीमती खिलौने खरीदने पर प्राय हम बच्चो को यह सुझाव दे देते है कि उन्हें दूसरे बच्चो को नही खेलाना चाहिए। किन्तु यह हमारी

बहुत बड़ी भूल है। हमें इस अवसर पर ऐसे सुझाव देने ही नहीं चाहिए अच्छा तो यह होगा कि ऐसे खिलौने खरीदे ही न जायें। जब इस प्रकार के सुझाव बच्चों को दिये जाते हैं तो इसका उनपर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे स्वार्थी हो जाते हैं। कभी-कभी हमें यह सुनने को मिलता है, जब बच्चे अपनी माता या पिता से कहते हैं—'माता जी, अब मैं इसे किसी को छूने भी न दूंगा"। यह प्रवृत्ति बालकों को स्वार्थ का मार्ग प्रशस्त करने को पर्याप्त है। हम तो खिलौनों की सुरक्षा के लिए ऐसा कह देते हैं कि ' तुम अपने ही खेलो" पर इस बात से वह एक बुरी आदत सीख लेता है।

उपसंहार—इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि खिलौने आनन्द को केवल उद्भूत ही नहीं कर सकते बल्कि बढ़ाते भी हैं जिस प्रकार वयस्कों को मोटर या टेलीवीजन के सेट प्रफुल्लित कर देते हैं और उनकी प्रसन्नता की अभिवृद्धि कर देते हैं। यदि बच्चे खिलौने नहीं तैयार करते हैं और उनके बिना प्रसन्न रह सकते हैं तो हमें समझ लेना चाहिए कि हमारी बच्चों की पालने वाली शैली ही दोषयुक्त है। वह मित्र-मण्डली स्वतन्त्रता और खेलने की स्वेच्छा तीन चीजें यदि न मिलें तो उनमें प्रसन्नता की अनुपस्थिति संभव है। अतः इन तीनों बातों का ध्यान रखना चाहिए। पर एक मनोवैज्ञानिक ने तो यहाँ तक कहा है कि हम प्रत्येक वस्तु छड़ी, पत्थर, फूल आदि से खेलते हैं, चारों ओर दौड़ते हैं प्रत्येक वस्तु की ओर देखते हैं और उन्हें प्राप्त भी करते हैं, गा सकते हैं, चिल्ला सकते हैं। अतः हमें खिलौने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह धारणा भी किसी सीमा तक उचित है।

अध्याय १३

पुस्तकें

प्राय बच्चे अपनी पुस्तकें असावधानी से रखते हुए देखे जाते है। पाठशाला में चाहे किसी प्रकार भी उनके साथ व्यवहार करें, घर पर आने पर भी उन्हे रखने में विशेष ध्यान नहीं देते। ऐसे बच्चों को कुशल नही कहा जा सकता। माता-पिता को बच्चों के इस दुगुण पर दृष्टिपात करना चाहिये। अच्छे बच्चे तो स्वयं इस काय में पटु होते ह। गृह में यदि पुस्तकों का समादर होता है, उनकी रक्षा का ध्यान रखा जाता है तो निश्चय ही उनमें भी यही प्रवृत्ति प्रादुर्भूत होती है। बच्चे वातावरण से बहुत सक्रिय होते है और अपने को उसी रूप में ढालने को सदैव अभिप्रेत करते है जैसा कि वातावरण होता है। यदि माता पिता पुस्तकों को अधिक प्यार करते हैं उन्हे सजाने और सुरक्षित रखने के लिए अधिक समुत्सुक रहते है तो बच्चे भी ऐसा ही करेंगे। अत बच्चों में पुस्तकों के प्रति उदासीन होने की भावना की उत्पत्ति में माता-पिता का बहुत बड़ा हाथ है। हम जितनी सावधानी से अपनी पुस्तकें रखते हैं, उससे कम ध्यान बच्चों की पुस्तकों पर नही देना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिये कि उनकी पुस्तकें अस्त व्यस्त रूप में जहाँ-तहाँ फेंक दी जायें। अच्छा होता, यदि बच्चे की पुस्तकों की रक्षा का भार उसी पर छोड दिया जाय। पुस्तकें रखने के लिए एक आलमारी अथवा रैक का प्रबन्ध अलग कर दिया जाय। इससे उनमें पुस्तकों के सजाने की भावना आ जायेगी और वे अपनी पुस्तकों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ही अनुभव करेंगे। अधिकतर बच्चे अपनी पुस्तकों का मुख-पृष्ठ अथवा कोने का अंश फाड डालते है। वे अपने भीगे और गन्दे हाथ से पुस्तकों को स्पर्श करने में हिचकते नहीं। स्याही के धब्बे से उन्हे भर देते हैं। पर ये आदतें उन्हें समझा कर छुड़ाई जा सकती है।

नव शिशु के लिए पुस्तकें—पुस्तकों द्वारा बच्चे की अनुभव-शक्ति में अभिवृद्धि की जा सकती है। संसार में प्रवेश करने का प्रथम प्रभावन बच्चों के हेतु ये ही हैं। दो से तीन-साढ़े तीन वर्ष के बच्चों के लिए इनमें निर्मित चित्र ही आवश्यक होते हैं। जब बच्चे इन्हें खोलते हैं और अचानक उनकी दृष्टि बड़े-लम्बे चित्र पर जाती है तो वे आनन्दातिरेक से चिल्ला उठते हैं। यदि वे चित्र को पहचानते हैं तो उसका नाम भी ले सकते हैं। जैसे यदि गाय का चित्र है तो गाय ही कहेंगे। हाँ एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें ऐसे चित्र न दिये जायें जो टेढ़े-मेढ़ और पेचीदे हों, जिन्हें वे सरलतापूर्वक न पहचान सकें। यदि चित्र बकरी का है तो वास्तविक बकरी से थोड़ा भी भिन्न नहीं होना चाहिए। देखते ही मालूम हो जाय कि वह अमुक जीव का चित्र है। अतः चित्र बहुत छोटा और कुरूप न हो। बच्चे चित्रों को पहचानने में एक आनन्द का अनुभव करते हैं। इस अवस्था में उन्हें ऐसी पुस्तक देनी चाहिए जो रंगीन चित्रों से भरी हो। उनमें घर की अन्यान्य प्रायोगिक वस्तुओं के ही चित्र होने चाहिए जिन्हें बच्चे सरलता से पहचान जायें। बर्तन, खिलौने पालतू जानवर, मुर्गी मेज आदि इनसे परिचित हैं और इन्हें वे अच्छी तरह पहचान सकते हैं।

बच्चों के लिए ऐसी ही पुस्तकें खरीदनी चाहिए जिनमें उनके आनन्द की सामग्री हो। यद्यपि इनका मूल्य अधिक होता है पर छोटी-छोटी कई पुस्तकों के स्थान पर यह एक ही पर्याप्त होती है। बच्चे अच्छे चित्रों को बार-बार देखते हैं और प्रफुल्लित होते हैं। इनमें पढ़ने का आनन्द उन्हें उतना आवश्यक नहीं जान पड़ता जितना चित्रों से मिलता है। पर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों वे बढ़ते हैं उनमें कथाओं के प्रति प्रेम जागृत होता जाता है। वे कहानी सुनना बहुत पसन्द करने लगते हैं। कुछ ऐसी भी पुस्तकें मिलती हैं जिनमें चित्रों का निर्माण किसी कथा विशेष का निदर्शन करता है। इन्हें देखकर बच्चे कहानी भी बहुत कुछ समझ जाते हैं। यद्यपि ऐसी पुस्तकें बहुत कीमती मिलती हैं पर होती हैं बच्चों के बहुत काम की। इन चित्रों से स्पष्ट कहानी का प्रवाह ज्ञात हो जाना चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों में बहुत ऐसी होती हैं जिनके प्रत्येक पृष्ठ चित्रित होते हैं और पृष्ठ पर लिखे

गये अश का सार चित्र में ही अकित होता है। ऐसी पुस्तकें बच्चो के उत्तम होती ह । इनसे उनकी चित्र दशन और उन दोनो भावनाआ को प्रोत्साहन मिलता है।

जब बच्चे बहुत छोटी वय के होते ह तो उस समय भी वे पद्य पसन्द करते ह। पाठशालाओ में जा प्राथनाएँ कराई जाती है, उन्हे कण्ठस्थ करने और गाने में उन्हें आनन्द आता है । प्राय वे कथाएँ जो पद्य में होती ह बच्चे अधिक पसन्द करते ह । उन्ह आदि से अन्त तक याद कर जाते ह और जब कभी एकान्त पाते ह उन्हें दुहराने लगते ह। घरों में भजन या अचना में गाई जाने वाली पक्तियाँ उन्हें याद हो जाती ह और परिवार के अन्य लोगो के साथ गाने में उन्हें प्रसन्नता होती ह। बरसात के दिनो में जब घर में बैठे-बैठ बाहर की रिमझिम बूदो पर उनका ध्यान जाता ह तो अकस्मात् उनके मुख से 'वर्षा आई, वर्षा आई' की सुरीली राग फूट पड़ती है। वाटिका में चले जाने पर भाँति-भाँति के फूलो पर दृष्टि दौडाते हुए जब वे गुलाब की पक्ति की ओर देखते ह तो 'ह गुलाब फूलो का राजा गा उठते है । प्राय एकान्त में उन्हें कण्ठस्थ पंक्तियों को दुहराने का अवसर मिलता है। इस प्रकार बच्चा को गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। इसका प्रधान कारण इसका गेय गुण ही ह। प्राय न्हन्न छोटे शिशु भी किसी को गाते देखकर अपनी तुतली बोली में आ आ आ कर उठते हैं और ताली बजाकर अपना आनन्द उच्छ्वसित करत ह। प्रारम्भ में जब उन्हे कोई पाठ्य पुस्तक दी जाती है तो सवप्रथम वे उसके रगीन चित्रो को देख जाते ह, तत्पश्चात पद्यों का अवलोकन करते ह, फिर मजेदार कहानिया का और तब कहीं अन्य अशों का। यही क्रम उनके ज्ञान में भी यदि रखा जाय तो अधिक श्रेयस्कर हो। बच्चे गम्भीर विषयो का अध्ययन नही करना चाहते और उनके इस विचार पर दवाव भी नही डालना चाहिए। ज्यो-ज्यों उनमें बुद्धि और ज्ञान का विकास होता जायेगा त्यो-त्यो उनकी रुचि गम्भीर विषया की ओर तीव्रतर होती जायेगी।

पौराणिक गाथाएँ और अविश्वसनीय कथाएँ—उपयुक्त पक्तियों में हमने देख लिया ह कि बच्चो की प्रारम्भिक रुचि कहानियो की ओर

अर्पित किये जायें तो उनके हित में वाछनीय होगा। बच्चो को बुरा प्रभाव डालने वाली पुस्तकें या पत्रिकाएँ नही पढ़ने देना चाहिए। जिन्हें पढ़कर भय उत्पन्न हो अथवा बुरी प्रवृत्ति मिले ऐसी चीजें उन्हें छूने भी नही देना चाहिए।

अधिकतर ऐसे परिवार देखे जाते हैं जहाँ लोग अशिक्षित है अथवा शिक्षित होने पर भी इन बातो से उदासीन रहते है। इसका कारण मुख्यत बाल-मनोविज्ञान का अज्ञान ही है। यदि वे इन बातो मे सावधान रहते है तो बच्चों का झुकाव बुरे मार्गों की ओर कदापि नहीं हो सकता। हमें अपने लिए भी ऐसी ही पुस्तकें रखनी चाहिए जो बच्चा के हेतु भी उपयोगी हो। उस प्रकार की पुस्तकें जो बच्चो पर बुरा प्रभाव छोड़ सकती है ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जिसे बच्चे पा न सकें। बच्चा की अध्ययन वाली पुस्तकों का हमें समय-समय पर निरीक्षण कर लेना चाहिए। ऐसा न हो कि वे किसी ऐसी पुस्तक का अध्ययन कर रहे हों जो भविष्य के लिए अहितकर हो। पुस्तकालय में जाकर बच्चा के लिए ऐसी पुस्तकों को देना निषेध करना चाहिए। इस प्रकार यदि हम बच्चा का प्रारम्भिक जीवन सुधार दें तो निश्चय ही उनके विकास का साधन प्रशस्त हो जायगा। उनका जीवन प्रारम्भिक स्कूली जीवन पर ही निर्भर नही करता अपितु गृह और पुस्तकालय का अध्ययन भी उसका उत्तरदायी होता है।

अध्याय १४

शिक्षारम्भ

बच्चों का प्रारम्भिक स्कूली जीवन उनके जीवन का प्रथम चरण है। इसके पहले उनका ससार ही दूसरा रहता है और उनके कार्य-कलाप भी भिन्न रहते है। यह उनकी प्रथम अवस्था होती है जबकि उन्हे माता से दूर जाकर किसी अन्य द्वारा शासित होना पड़ता है। ये सभी चीजें विह्वल करने वाली और आगामी जीवन की सूचना देनेवाली होती है। इस जीवन में बहुत सी ऐसी भी घटनाएँ आती हैं जो वयस्क जीवन का सामना कर सकती है। हमें अपने जीवन में परम्परागत विनम्रता और शिष्टता का सदैव ध्यान रखना पड़ता है परन्तु बच्चों के समक्ष ऐसी कोई बाधा नहीं है। प्राय प्रत्येक बच्चे जब सर्वप्रथम क्रीडास्थल में उतरते है तो उन्हें लोगो की भीड, आलोचनात्मक वचन, भयकर शोर, व्यक्तिगत विचारों का जमघट आदि का सामना करना पड़ता है। यह जीवन की प्रथम वस्तु होती है। ऐसा फिर कभी नही होता। पीड़ा रस होना नवीन बात नहीं होती प्राचीन हो जाती है। वास्तव में यह जीवन का ऐसा अग है जबकि भौतिक ससार में प्रविष्ट हुआ जाता है और जीवन के नवीन प्रयोग किए जाते हैं।

कुछ बच्चे ऐसे देखे जाते है जो पाठशाला में प्रवेश करने में हिच-किचाहट प्रदर्शित करते है। उनका प्रथम प्रवेश ऐसा होता है जैसे वयस्क तालाब में सम्भल-सम्भल कर घुसते है। पाठशाला का वातावरण उन्हे कारागार-सा प्रतीत होता है। वे आस-पास की वस्तुओ से परिचित होने में उदासीन से दीखते हैं। इसका कारण उनमें चैतन्यशीलता का अभाव ही है। ऐसे स्थलों में उन्हें माता-पिता की आवश्यकता होनी है। किन्तु हमारे साथ भी यह प्रश्न उठता है कि कौन सा मार्ग हमारे लिए अपनाना उत्तम होगा। इसके लिए पहला आदर्श हमारे सम्मुख यह होगा कि

पाठशाला-जीवन के पूर्व ही बच्चे को उसके समवयस्कों से मेल बढ़ाने का अवसर देना चाहिए। ऐसा होने पर उसे बच्चों में मिलने की झिझक नहीं रहेगी और संगति में रहना भी सीख जावेगा। माता-पिता के सम्पर्क से निकलकर समवयस्कों की संगति में आनन्द प्राप्त करने की उसे आदत सी पड़ जाती है और वह स्कूली जीवन में सूनापन का आभास नहीं करता। दूसरी वस्तु ध्यान देने योग्य यह है कि बच्चे का पाठशाला जाना नियमित बनाना चाहिए। नियमित होने से बच्चा का जीवन सुव्यवस्थित हो जाता है और झिझक की मात्रा समाप्तप्राय हो जाती है। यह अनुभव की बात है कि जब बच्चे कुछ दिनों की अनुपस्थिति के बाद पाठशाला जाते हैं तो पुन: उन्हें एक प्रकार की हिचकिचाहट होती है। अत: बच्चों का प्रतिदिन उपस्थित होना बहुत ही आवश्यक है।

बच्चों को अपना काम स्वयं करने की प्रेरणा देनी चाहिए। उन्हें जब समय मिले उन्हें यह सिखलाना चाहिए कि कपड़ा कैसे पहना जाता है, बाल में कंघी कैसे की जाती है, जूते कैसे पहने जाते हैं आदि। इन दैनिक कार्यों की शिक्षा शीघ्रता में नहीं देनी चाहिए अपितु शान्त वातावरण इसके लिए उपयुक्त होता है। बहुत सी माताएँ ऐसी देखी जाती हैं जो बच्चे को उसके कपड़े उसी के हाथों से पहनने देना नहीं चाहतीं। जब पाठशाला का समय सन्निकट आ जाता है तो वे शीघ्रता करके उन्हें वहाँ भेजती हैं। इसका प्रभाव उन पर उपयोगी नहीं सिद्ध होता। इससे बच्चों में चिन्ता का अभ्युदय होता है और अयोग्यता की एक भावना उत्पन्न होती है जो उसे असहाय बना देती है। बच्चों की इस अवस्था में वस्त्र पहनने का ढंग बड़ा महत्व रखता है।

बहुधा बच्चे स्कूली-जीवन में प्रवेश करते समय ही अपनी रक्षा करना जान जाते हैं। यदि बच्चा बहुत कम ही आयु में है तो इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जो बच्चे बड़े होते हैं वे भीड़ में होकर भी पाठशाला जा आ सकते हैं पर छोटे बच्चों के लिए यह एक समस्या-सी हो जाती है। यदि मार्ग में किसी चालू सड़क को पार करना है तो और कठिन हो जाता है। यद्यपि सड़क पर खड़े पुलिस किसी सीमा तक बच्चों की रक्षा कर सकते हैं परन्तु माता-पिता का इसमें सान्निध्य नहीं

मिल सकती। इसके लिए उन्हे स्वय कष्ट करना चाहिए और बच्चे को समय से पाठशाला पहुँचाना और ले आना चाहिए। पर हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीच में कभी नागा न हो। यदि बच्चे के साथ कोई बडा बच्चा पाठशाला जाने वाला मिल जाय तो वह उसकी रक्षा के लिए पर्याप्त है। बच्चों को अकेले जाने से कभी-कभी हानि उठानी पडती है और ऐसे अवसर नगरो में ही आते है। देहातो में ऐसी घटनाओं के लिए साधन ही नहीं होते। बच्चो को शिक्षक के सम्पर्क में अधिक लाने के लिए उनसे परिचय कराना चाहिए और बच्चे के विषय में सुझाव देने और लेने चाहिए। यदि बच्चा अपने अध्यापक से भयभीत होता है अथवा सकोच करता है तो आप अध्यापक को अपने घर पर आमन्त्रित करें और उन्हे बच्चे के अधिक सम्पर्क में लावें।

पाठशाला से लौटने पर बच्चे थके-से जाते है। उनकी शक्ति दिन भर के अनवरत परिश्रम से सन्ध्या तक ह्रास-सीमा तक पहुँच जाती है। ऐसी अवस्था में बच्चे के ऊपर ध्यान देना चाहिए। उसे कोई ऐसी बात नही कहनी चाहिए जो कष्टप्रद हो, क्योंकि थके रहने पर बच्चो में क्रोध बहुत शीघ्र आता है और बडो से भी झगड जाते है। हमें ऐसा अवसर ही नही आने देना चाहिए। उन पर इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि वे अधिक से अधिक आराम ले सकें। अँगरजी के 'शीघ्र सोओ और शीघ्र जागो' वाले मुहाविरे का यदि अक्षरश पालन किया जाय तो उत्तम होगा। यदि वे रात्रि भर सो सकें तो अच्छा है। अत नियमित समय पर उन्हें उठाना चाहिए जिससे वे शान्तिपूर्वक अपने नित्य कार्य से निवृत्त हो पाठशाला जाने के कपडे स्वय पहिन सकें। भोजन में कोई घबराहट नही होनी चाहिए। प्राय बच्चो को भोजन करते समय पाठशाला की देर से घबरा दिया जाता है। इससे वे भयभीत हो जाते है और उनका पाचन ठीक से नहीं हो पाता।

माता-पिता को स्वाभाविक रूप बच्चो के पाठशाला के कार्य-कलाप एव व्यवहार के विषय में रुचि दिखलानी चाहिए। उनके अनेक प्रकार के प्रश्नो और शैली को सुधारना चाहिए, बुरे बर्ताव को ठीक करना चाहिए। बच्चों के साथ-साथ उसके सहपाठी मित्रों से भी आसक्त

होना चाहिए। उन पर कड़ी निगाह रखते हुए मैत्री करना चाहिए और उनके व्यवहारों से परिचित होना चाहिए। यदि उनमें कोई ऐसा साथी है जो आपके बच्चे को कुमार्ग पर ले जा सकता है तो चतुरता से बच्चे का सहवास छुड़ाना चाहिए।

बोलने की शैली—बच्चों के साथ बातचीत की जैसी शैली अपनाई जाती है बहुत अंश में उन पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। यदि उनके साथ सम्भाषण की शैली कटु होती है, या रोषजनक है तो शोकप्रेषण और विवाद का कारण बन सकती है। मधुर वाणी का प्रयोग करने पर वे भी वैसा ही बोलने का प्रयास करेंगे। पाठशाला में संगति का प्रभाव भी इस शैली पर काम करता है। यदि बच्चे का सहवास एसे बच्चों से है जिन्हें ठीक बोलने की क्षमता नहीं है तो निसन्देह बालक की सम्भाषण शैली उससे प्रभावित हो जावेगी। कुछ काल पश्चात् उसकी शैली गृह और पाठशाला की मिश्रित शैली हो जावेगी। सौभाग्यवश यदि उसकी संगति मधुर भाषी बच्चों से है तो उसके बोलने का ढंग और भी शिष्ट हो सकेगा।

बर्ताव-व्यवहार—जिस प्रकार सम्भाषण की शैली पर संगति का प्रभाव पड़ता है ठीक उसी प्रकार बर्ताव और व्यवहार भी संगति के अनुसार ही चलते हैं। बचपन में जिसकी संगति बुरी हो गई वह बाद में भी उसी संगति को चाहेगा और उसी के अनुसार उसके व्यवहार भी हो जायेंगे। प्रायः देखा जाता है कि पाठशाला का कटु अनुशासन घर पर प्रतिक्रिया कर बैठता है। छोटे बच्चे जो शान्तिपूर्वक पाठशाला में बैठते हैं, ध्यान से बताई गई बात सुनते हैं, वे शोरों का शोर करने की कल्पना किया करते हैं और यह अवसर उन्हें छुट्टी होने पर ही प्राप्त होता है। अस्तु सन्ध्या को जब पाठशाला से अवकाश मिलता है तो बच्चे शोर करते हुए निकलते हैं। यदि हम उनकी इस प्रवृत्ति को दबा देते हैं तो वह दब तो जावेगी पर किसी मार्ग का अनुसरण अवश्य ही करेगी। वे दरवाजे को जोर से बन्द करेंगे, कोई सामान उलट-पुलट देंगे अथवा छोटी बहन या बिल्ली पर ही बरस पड़ेंगे। यदि गृह में भी उन्हें शोर करने की बाधा हो तो उन्हें सन्ध्या समय कोई ऐसा स्थल खेलने की आदत डालनी चाहिए जहाँ वे स्वतन्त्रतापूर्वक शोर कर सकें।

बच्चा में पाठशाला की सजावट के विरुद्ध प्रतिक्रिया पाई जाती है। पाठशाला में वे सभी चीजों को क्रमानुसार करेंगे और सजावट में किसी प्रकार की उदासीनता प्रदर्शित नही करेंगे। पर पाठशाला से घर आने पर अपने कपड़े अस्त-व्यस्त छोड़ देंगे, पुस्तकें ठीक स्थान पर नही रखेंगे। फलत आवश्यकता की वस्तु ढूढ़ने पर नही मिल सकेगी। बच्चो को जिद करके उनके कपड़े आदि को यथास्थान रखवाना चाहिए। पर उन्हे डाँटकर नही विवश करना चाहिए अपितु ऐसे शब्दो में उन्हे समझा देना चाहिए कि हमें उसके कपड़े रखने के लिए समय ही नही है या खोई वस्तु ढूढने का अवकाश नही है। पाठशाला में बच्चो में जब आत्म-विश्वास का अभाव होता है तो वे शोर करते छलाँग मारते, क्रोध करते और चिल्ला कर बोलते है। शिक्षाओ का तारतम्य भी उन्हें विक्षुब्ध कर देता है और कुछ कहने मे भी वे रुक जाते है। आप उन पर कोई दबाव न डालें, वे स्वय जो कुछ कहना चाहते रहेंगे, कह देंगे। फिर भी यदि कुछ अवशिष्ट रह जाय तो आपको मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सब कुछ समझ लेना चाहिए। कुछ लोग अपनी शिक्षाओं द्वारा बच्चे की आदत बिगाड़ देते है। वे कहा करते है, "अपने से सावधान रहो" या "दूसरे लोगों से बच कर रहो"। अपनी रक्षा तो बच्चों में स्वभावत पाई जाती है। उन्हें इस प्रकार के शब्द-जाल की कोई आवश्यकता नहीं होती। परन्तु कुछ ऐसे भी बच्चे होते है जो डरपोक प्रवृत्ति रखते है और ऐसे स्थल आने पर भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते है। इस प्रकार के बच्चो की इस प्रवृत्ति का निराकरण सावधानी से करना चाहिए।

बच्चों की जिद्—बच्चो के पालन में उनकी जिद पर अधिक ध्यान देना चाहिए। कुछ बच्चो में बात-बात पर जिद करने की आदत-सी हो जाती है। ऐसी दशा में हमें अपनी असावधानी पर विचार करना चाहिए जिसके फलस्वरूप इस आदत का प्रादुर्भाव हुआ है। क्या आप उसे अन्य बच्चों की भाँति वस्त्र नहीं पहनाते ? क्या उसके बाल ढग से नही कटे है अथवा क्या आप दूसरे बच्चों के सम्मुख ही उसे डाँटते है ? अथवा आपका प्यार प्यार की सीमा तो पार नही कर रहा है, आदि प्रश्न स्वत करने चाहिए और यदि कोई कारण दृष्टिगत हो तो शीघ्र उसका निवारण

होना चाहिए। यदि आप में इस प्रकार का कोई अभाव नहीं ह तो आप उसके कष्ट को जानन का प्रयास करें। इस प्रयास में बच्चे से सम्भाषण करके भी कुछ बातें जानी जा सकती है, परन्तु यह सब कुछ विनम्रता से ही होना चाहिए। आप उसे अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करें किन्तु इसक लिए सीमित अश ही वाछनीय है। इस प्रकार एक नवीन आचरण का पथ-प्रदशन करना चाहिए। इसी अवसर पर उसके कुछ सहपाठियों का उसे सहयोग प्रदान करना चाहिए और उनमें मित्रता की भावना उद्भूत करनी चाहिए। इन बातो का प्रभाव उसके ऊपर ऐसा पडेगा कि वह स्वय अपनी आदत को बुरा समझने लगेगा और उसे तत्काल तिलाजलि देन को विवश होगा।

दुल्हताओं का सुधार—बहुत से बच्चे जो घर पर बहुत शोर और छेड-छाड करते ह पाठशाला में जाने पर बिल्कुल शात हो जाते है। उनका आत्म विश्वास बढ़ जाता है। विशेषतया जब बच्चे बडी पाठशाला में प्रविष्ट होते ह तो अपेक्षाकृत उन पर इन बातो का अधिक प्रभाव पडता है। बच्चे एक दूसरे की आलोचना करने में बहुत पटु होते है। दूसरे सहपाठी का गण-दोष विवेचन करने में उन्हें आनन्द आता ह। यही कारण है कि बच्चे जो घर पर शिष्ट और सुसभ्य व्यवहार से पेश आत ह, पाठशाला में कभी-कभी उद्दण्डता कर बठते हैं। एसी दशा में हमारा पहला कत्तव्य यह होता ह कि हम उनके इस काय पर बहुत क्रुद्ध हो अथवा उन्हें प्रताडित भी करें। ऐसा करने पर वह अपनी त्रुटि अनुभव करेगा और मधुर वाणी में बोलना प्रारम्भ करेगा तथा अपनी रक्षा करना चाहेगा। हमें बच्चों के इन दुर्गुणो पर कटु दृष्टि रखनी चाहिए। यदि बच्चे के कार्यों की आलोचना भी करने में नहीं चूकते तो हम उनके गृह के आत्म-विश्वास को भी विनष्ट कर सकते हैं। परामदि हम बच्चे की इन कमियों का शान्तिपूर्वक निवारण करना चाहें तो वे सभी विनष्ट हो सकती ह और बच्चा नव-जग के लिए सुधर जायेगा।

व्यक्तिगत पाठशालाएँ—कभी-कभी माता-पिता बच्चों को पाठ शाला भेजने से भयभीत होते देखे जाते है। उन्हें बच्चे का दुगुण-पथ का अनुगामी बन जाने का सशय रहता है। विवश हो वे उन्हें व्यक्तिगत

पाठशालाओं में भर्ती करा देते हैं यद्यपि उन्हें ये पाठशालाएँ मँहगी पड़ती हैं। इस प्रकार की पाठशालाओं के साथ भी कई समस्याएँ हैं। प्रथम तो ये स्थानीय शिक्षा द्वारा संचालित होती हैं और मँहगी पड़ती है। दूसरे बच्चों का वर्ताव और व्यवहार अच्छा नहीं बन पाता, वे मधुर भाषी भले ही हो जायें। बच्चों में सबसे प्रधान गुण यह होना चाहिए कि वे सभी प्रकार के बच्चों से मिल सकें। ऐसा होने से उनमें सहानुभूति की भावना का आविर्भाव होता है और उनकी ज्ञान चक्षु भी जागरूक होती है।

बच्चों की मित्रता—बच्चे अपने मित्र अपनी स्थिति के अनुसार ही बनाते हैं जैसा स्वयं हम लोग भी करते हैं। हमें बच्चों के इस विचार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वे जिसे समवयस्क चाहें स्वेच्छा से अपना मित्र बना सकते हैं। हमें चाहिए कि हम उनके सभी मित्रों का हार्दिक स्वागत करें। इससे उनमें आत्म विश्वास और प्रसन्नता विद्यमान रह सकती है। यदि बच्चे का किसी ऐसे गृह के बच्चे से साथ हो गया है जिसका परिवार सामाजिक दृष्टिकोण से नहीं वरन् नैतिक दृष्टिकोण से निकृष्ट है तो उन्हें ऐसा करने से रोकना चाहिए। यदि संभव हो तो उन्हें अपने ही क्रीडास्थल पर अथवा वाटिका में खेलने के लिए बुलाना चाहिए। किन्तु अच्छा यही होता कि ऐसी विपत्ति ही न मोल ली जाय। बच्चों का आकर्षण अपने समान स्थिति वालों की ओर बहुधा होता है और उनकी मैत्री तब तक चलती है जब तक कोई सत्य की सीमा न तोड़ दे। हमें अचानक उनकी मित्रता में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए इससे उनमें हमारा महत्व समाप्त हो जाता है और वे हमारी ओर क्रोध की भावना प्रदर्शित करते हैं।

अध्याय १५

स्कूल में बच्चा

पिछले परिच्छेद में हमने बच्चे की प्रारम्भिक शिक्षा का संकेत किय था, यहाँ उसकी उन अवस्थाओं पर प्रकाश डाला जायगा जो बच्चे के सम्मुख स्कूल में आती है अथवा यह समझिये कि स्कूली जीवन में जि परिस्थितियों का सामना बच्चे को करना पड़ता है।

जब बच्चा स्कूल में जाता है तो उसे सर्वथा नवीन वातावरण मिलत है और बहुधा नई-नई रीतियों से उसका साक्षात्कार होता है। उन बच्चं को तो स्कूल और भी विचित्र-सा लगता है जिनको घर पर अनियमित और अव्यवस्थित ढंग से रक्खा जाता है। वह तो यह कहिए कि हमार देश के ९९ प्रतिशत स्कूलों में मनोवैज्ञानिक व्यवस्था रहती है और बच्चे को घर का-सा वातावरण ही यहाँ भी मिलता है किन्तु पाश्चात्य देशों में जहाँ पूर्णतया मनोवैज्ञानिक ढंग पर स्कूलों का संचालन होता है वहाँ वास्तव में यह समस्या बड़ी विकट हो जाती है कि बच्चे के स्कूल और घर के वातावरण में किसी प्रकार साम्य स्थापित किया जाय। हमारे यहाँ नर्सरी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के साथ भी यही प्रश्न है। हम उनको घर पर दूसरे ढंग से रखते हैं और स्कूल में बच्चा पूर्णतया दूसरे ढंग से रक्खा जाता है। इस विषमता का बहुत ही गहरा प्रभाव बालक पर पड़ता है। कभी-कभी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है कि बच्चा घर वालों को विशेषतया माता को अनुभवहीन और अकुशल समझने लगता है क्योंकि वह देखता है कि स्कूल में उसकी सर्वशिक्षा उसे अपेक्षा कृत सुन्दर ढंग से पालती है। अतः हमें ऐसी अवस्था से सदैव सतर्क रहना है और इसका एकमात्र उपाय है बच्चे के भावात्मक विकास के साथ साथ चलना। यदि बच्चा स्कूल के प्रति अधिक आकृष्ट है तो यह लक्षण सुन्दर है और हम उसके स्कूल-जीवन के एक मात्र सहायक बनने का प्रयास करके उसका प्रेम पूर्ववत प्राप्त कर सकते हैं। बच्चे को स्कूल

में कुछ ऐसे काय कराये जाते ह अथवा सिखलाये जाते ह जिनको घर पर हमारा सहयोग नितान्त आवश्यक है। ऐसे ही कार्यों में बच्चे की सहायता करके हम उहें लाभान्वित कर सकते ह और साथ ही अपनी स्थिति भी सुदृढ़ कर सकते हैं।

वर्तमान शिक्षण विधि और माता-पिता—यहाँ यह बता देना आवश्यक है (जसा कि बहुत से माता पिता जानते भी हैं) कि वतमान शिक्षण विधि पूणतया परिवर्तित हो गई और अब पहले की अपेक्षा बिल्कुल नूतन प्रणाली द्वारा बालकों को प्रशिक्षित किया जाता है। यही कारण ह कि कुछ माता पिता जो अपने बालको की शिक्षा में घर पर सहायता भी देना चाहते ह वे विवश हो जाते है और कहते हैं कि "पता नहीं अब बच्चो को क्या पढ़ाया जाता ह ?" बच्चों को जो कुछ पढाया जा रहा है वह निश्चय ही पहले की अपेक्षा लाभकर है जब तक कि कोई सुधार नहीं होता यही विधि उत्तम ह। अत उपरोक्त वाक्य कहकर बच्चो के हृदय में शिक्षा या शिक्षा प्रणाली के प्रति उदासीनता उत्पन्न कराना अहित-कर है। हमें चाहिए कि हम बच्चा के स्कूल के कार्यों को देखें, उन्हें प्रोत्साहित करें और जो कुछ समझ सकें उतना बच्चों को समझाने का प्रयास करें। बच्चे प्रोत्साहन मात्र चाहते ह। यदि हमन उनकी इस इच्छा की पूर्ति कर दी तो अपना कतव्य पूरा-पूरा निभा दिया। कभी-कभी उनके सम्मुख उलझनें आ जाती ह, यदि हम उन्हें सुलझाने में भी सफल होते हैं तो क्या पूछना। बच्चे का साहस और भी बढ जाता ह।

बच्चों की सहायता—ऊपर बच्चा के स्कूल के काय में घर पर सहायता देने का सकेत किया गया था। इस पर कुछ विस्तारपूर्वक प्रकाश डालना आवश्यक है। कुछ अध्यापक यह नही चाहते ह कि बच्चो को घर से ही आगामी पाठ पढाकर भेजा जाय और कुछ इसके घोर समर्थक हैं। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो हितप्रद स्थिति दोनो के बीच में ह। न तो बच्चो को घर स ही 'अध्यापक' बनाकर अध्यापक के समक्ष भेजा जाय और न उनके लाख पूछने पर भी मौन रहा जाय। बहुधा यह देखा जाता है कि कक्षा में किसी कारणवश अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी की व्यक्तिक कठिनाइयों को नहीं दूर कर पाता है और इसी

दशा में बालक माता-पिता से अपनी कठिनाइयों को दूर कराना चाहते है। यदि बच्चे के ऐसे अवसर पर सहायता नहीं दी गई तो उसके अन्य साथी आगे बढ़ जायेंगे और वह पिछड़ा रह जायेगा। अतः हमारे विचार से बच्चों को इस प्रकार की सहायता आवश्यक है। हाँ, ध्यान इस बात का भी रखना चाहिए कि उन्हें अनावश्यक इतना आगे न बढ़ा दिया जाय कि कक्षा में उन्हें कुछ पढ़ना ही न रह जाय। ऐसी स्थिति में वे कक्षा में तनिक भी रुचि नहीं लेंगे और इस प्रकार अशान्ति उत्पन्न कर सकते हैं।

हमें चाहिए कि हम उन प्रणालियों से परिचित हो जायें जिनसे बच्चों को प्रशिक्षित किया जाता है। घर पर उसी विधि द्वारा बच्चे को सहायता देनी चाहिए। उदाहरणार्थ यदि हम घर पर वर्णमाला कण्ठाग्र कराने की वही पुरानी-परिपाटी अपनाते हैं तो बच्चा घबरा जायगा क्योंकि कक्षा में उसे सर्वथा नवीन विधि से प्रशिक्षित किया जाता है। अंकगणित इतिहास, समाज शास्त्र आदि विषयों की शिक्षा भी मनोवैज्ञानिक ढंग से दी जानी चाहिए। बच्चों को कहानियों द्वारा विषय-ज्ञान कराने अथवा प्रयोगात्मक काम द्वारा शिक्षित करने का जितना सुन्दर अवसर घर पर मिल सकता है उतना अन्यत्र कहीं नहीं।

गृह कार्य—गृह-कार्य (Home work) के सम्बन्ध में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि बच्चा को अध्यापक इसलिए गृह-कार्य देते हैं कि वे स्वावलम्बन द्वारा कठिनाइयों पर विजय पा सकें। वे स्वयं देखें कि उनकी कमियाँ क्या हैं और वे उनको किस प्रकार दूर कर सकते हैं। अतः बच्चों के गृह-कार्य में सहायता देना (स्वयं उनका काम कर देना) सर्वथा अनुचित है। यदि हम इसी प्रकार उनकी सहायता करते रहेंगे तो वे कुछ दिनों बाद अपने को बिल्कुल पंगु पायेंगे और कुछ भी करने में असमर्थ रहेंगे। हाँ, सहायता कीजिए उन्हें गृह-काम के लिए स्वस्थ्य वातावरण प्रस्तुत करने में। बच्चे दिन भर स्कूल में रहने के बाद घर पर अधिक देर तक नहीं पढ़ सकते हैं। उनके पास समय का भी अभाव रहता है। अतः उनसे घर का अधिक काम न कराया जाय और उन्हें इतना अवसर दिया जाय कि वे निश्चिन्त होकर गृह-कार्य (Home work) कर सकें।

अध्याय १६

प्रगति

प्राय विश्व के सम्पूर्ण बच्चे पढना चाहते ह। बहुत कम ही ऐसे हा सक्त ह जो अपनी प्रगति की अभिलाषा नही करते हों। शशव मे ही उनमें वडे होन की आकाक्षा रहती ह और वे इसके लिए निरन्तर प्रयास भी करत ह। वे अपने वडे भाई या बहन को देखकर उन्ही के समान होना चाहते ह परन्तु उनका हृदय-बाँध उस समय चकनाचूर हो जाता ह जबकि उन्हें ज्ञात हो जाता ह कि वे कितना भी प्रयत्न करें उन्ह पा नही सकते ह। बच्चा में इस अभिलाषा का आविर्भाव माता-पिता के निमित्त अच्छा होता ह क्योंकि वे उन्हे विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहित करने की चेष्टा करते हैं। परन्तु बारह या तेरह वय की अवस्था में बच्चा स्वय एक समस्या बन जाता ह। वह यह सोचने लगता है कि अब वह बडा हो गया है उस अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। वह अपन को एक वयस्क की भाँति व्यवहृत करना चाहता ह। पाँच से बारह के मध्य की अवस्था बच्चे की शैशवावस्था के बाद की दूसरी अवस्था होती ह। इसमें माता-पिता को कुछ कठिनाइयाँ उठानी पडती ह। यदि बच्चे का पालन अब तक प्रसन्नता और विश्वास के वातावरण में हुआ ह तो इस अवस्था में भी वे यही चाहेंगे। किन्तु उनमें इन विचारो के त्याग के लिए उन्ह काय में व्यस्त रखना चाहिए। कार्य से अवकाश पाने पर खेल और मित्रा का सहवास आवश्यक होता है। इस समय एक आश्चयजनक वस्तु देखने को यह मिलती ह कि वे बुरे बच्चो को अपना मित्र नही बनाना चाहगें। अच्छे मित्रा स ही उनका सम्पक रहेगा। यौवनावस्था में उनमें विशेष परिवतन आ जाते ह। माता-पिता के साथ होने वाले व्यवहारों में भी परिवतन आ जाता ह। यह अवस्था शैशव और परिपक्वता के मध्य की होती है। बचपन की अवस्था और व्यवहार पूण रूपेण इस अवस्था

में परिवर्तित हो जाते ह और किशोर का अध्ययन करने के लिए पुनरपि प्रयास करना पडता ह ।

सम्बन्ध परिवर्तन—किशोरो का सम्बन्ध बच्चे के सम्बन्ध मे भिन्न हो जाता ह । वे अब बच्चे नही रह जाते, वयस्क भी नही होते किन्तु अपने को वयस्क मानने में तनिक नहीं हिचकते। उनके प्रति हमारी जो भावनाएँ रहती हैं उन्ह हमें देख लेना चाहिए। कही कोई एसी भावना तो नही है जो उसकी प्रगति में व्यवधान समुपस्थित करती ह। इस अवस्था में उन्हें अधिक अधिकार की भी आवश्यकता होती ह और उन्हें सँभालने के लिए भी अधिक सावधानी रखनी पडती है। उन्ह स्पष्ट रूप से किसी बात के लिए आज्ञा नहीं देनी चाहिए जिसके विषय में हमने पहले विचार किया है। उनकी प्रगति के लिए हम कई प्रकार से अपनी श्रद्धा प्रदर्शित कर सकते ह। हमें उनसे बच्चों के वस्त्र, व्यवहार आदि के लिए राय लेनी चाहिए। यदि बालिकाओं से इस विषय में कुछ पूछा जाय तो वे निश्चय ही बिना कुछ सोचे-समझे ठकुर-सुहाती करने लगेंगी। बालक अवश्य इस मामले में निष्पक्ष होते ह। उनसे हमें उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारो को सुनना चाहिए तथा गृह की आर्थिक समस्याओं में भी उन्हें हाथ बटाने देना चाहिए।

माता पिता के गृह-कार्यों में बच्चों को भी सम्मिलित होना चाहिए। किन्तु उन पर इस प्रकार के दबाव नहीं डालना चाहिए अपितु नम्रता और शिष्टतापूर्वक उनसे इस काय के लिए निवेदन करना चाहिए। ऐसा देखा जाता है कि जब हम किसी टूटी कुर्सी की मरम्मत करन लगते ह तो बच्चे भी स्वेच्छा से उसमें हाथ बटाना पसन्द करते हैं। जहाँ तक बालिकाओ का प्रश्न है वे भी माता के साथ खाना बनाने में अधिक सन्तुष्ट होती हैं बशर्ते कि माँ उनसे फुसला कर काम ले और उन्हें नई वस्तुओं के तैयार करने का ढग बतलाती रहें। हमें बालक-बालिकाओ से व्यवहार करते समय समरसता का अधिक ध्यान रखना चाहिए। यदि हमारा ध्यान बालक की ओर अपेक्षाकृत अधिक है तो बालिकाएँ अपने को उपेक्षणीय मानने लगती ह। हमें इस बात का सतत् प्रयास करना चाहिए कि बालिकाओ को इस भावना का अनुभव भी न हो सके। परिवार में

बालिकाएँ दोनों हू तो गृह्-काय का समान अश दोना को देना चाहिए। उदाहरणाथ यदि बच्चों का कपडा नित्य साफ किया जाता है तो यह बालक-बालिका दोनों में बाँट देना चाहिए। यदि एक दिन बालक कपडा धोवे तो दूसरे दिन बालिका। बालिकाओ के पक्ष से सावधान रहना चाहिए क्योंकि प्राय लोग उन्हे भ र-स्वरूप मानते हू। उनसे शिष्टता और सम्यता के साथ पेश आना चाहिए। ऐसा करने से वे अपना कत्तव्य और अधिक समझने लगती है।

बच्चों के नवयौवन में प्रवेश करने पर हमें अपने प्राचीन विचारों पर ध्यान देना चाहिए, अपने व्यवहारो को नये सिरे से आरम्भ करना चाहिए यदि हम उन्हें इस अवस्था म भी छोटे बच्चे की भाँति दबाकर रखना चाहते ह तो वे रखे तो जा सकते हैं परन्तु उनकी प्रगति की अभिलाषाएँ समाप्त हो जाती हू। अत उन्हें स्वतन्त्रता दकर उनके कत्तव्यो और अधिकारो का अनुभव कराना चाहिए। प्राय उस परिवार में जहाँ एक बच्चा रहता हैं अथवा बच्चे का सरक्षण माता पर ही होता है बच्चे की दशा कुछ और ही होती है। वह या तो बहुत गुणवान और कत्तव्य-परायण होता हू अथवा कुपथगामी बन जाता हू। क्योकि उसके लिए दोनों माग खुले रहते हू। नवयौवन में बच्चो को उतना प्रेम नही पाने देना चाहिए जितना वे शशव में पाते ह। धीरे-धीरे अपना स्नेह कम करते जाना चाहिए। ऐसा करने से उन्हें अपनी प्रगति और उत्थान का अवसर मिलता हू। कभी-कभी अपनी प्रगति की घबराहट में उन्हें हमारी सहायता की आवश्यकता होती ह किन्तु हमें सीमा का ध्यान रख कर ही उनकी घबराहट दूर करनी चाहिए। यौवन एक ऐसी अवस्था होती ह जब उसका शारीरिक और मानसिक दोनो विकास होता ह और उसक साथ ही नई समस्याएँ भी उदभूत होती हू। हम तभी उनकी सहायता कर सकते हू जबकि उनका विश्वास हमें प्राप्त हो तभी हम उन्हें राय दे सकते हू जब वे हमें अपने माग का बाधक न समझें।

यौवन मे शारीरिक परिवर्तन—यौवन के पदापण से शरीर में बहुत से परिवर्तन होने हैं। बालक और बालिकाएँ दोनो इस अकस्मात परि-वर्तन मे घबरा से उठते ह—अधिकतर उस समय जब बालिकाओ को

सवप्रथम मासिक धम होता ह । यदि इसका ज्ञान उन्ह पहले से नहीं होता ह तो कभी-कभी वे समझ बैठती हैं कि उन्हें बच्चा होने वाला ह । इससे कभी-कभी वे बहुत ज्यादा डर जाती हैं। एकान्त में रहना पसन्द करती ह और यहाँ तक कि किसी से बोलना भी पसन्द नहीं करती। अत माता को इस बात स सावधान रहना चाहिए और इस अवस्था के पूव ही उन्हें इसका परिज्ञान करा दना चाहिए। अच्छा तो हो कि बात के दौरान म उन्ह बच्चे होने की सभी बातें बतला दी जायें। हमने पहले ही पढ़ा ह कि तीन वर्षीय बच्चा भी यह जानने की चेष्टा करता ह कि वह कहाँ से आया'। यदि इस प्रश्न का उत्तर उसे प्रारम्भ मे ही समझा दिया जाता है तो यह घटना ही उपस्थित नही होती। उन्हें समझाने और बतलाने की शैली शिष्ट होनी चाहिए। मासिक धम के कारण को यों समझाया जाना चाहिए—"प्रति मास स्त्रियों के जननांग से एक प्रकार का द्रव उद्भूत होता है जिसमें शिशु के बीज को बढ़ाने की शक्ति रहती है यदि कोई बढ़ाव नहीं होता है तो यह द्रव बाहर निकल जाता है। यह क्रिया नियमित रूप से प्रतिमास होती है और उस समय बन्द हो जाती ह जबकि उदर में बढ़ाव प्रारम्भ हो जाता ह।' ऐसी व्याख्या करने पर वे इस अवस्था में घबराहट का अनुभव नहीं कर सकेंगी। इस अवस्था में एक प्रकार की हरारत होती है जिसको दूर करने के लिए बहुत अधिक आराम करना चाहिए। उन्हें कोई श्रान्त होनेवाला काय नहीं करना चाहिए। नहाने, खाने आदि का नित्य कम चलना चाहिए। इस समय उन्हें कष्ट पहुँचने का अधिक भय रहता ह। अत भारी कामों स सावधान रहना चाहिए।

पुत्र को यौवन की बातों का दिग्दशन पिता द्वारा कराना चाहिए। जब बालक उच्च कक्षाओं में पहुच जाय तो उसे यौवन की कुछ आवश्यक बातें बतानी चाहिए। 'बच्चे कैस पदा होते हैं' और 'विवाह में किन बातों का ज्ञान होना चाहिए, आदि प्रश्न सुलझाना चाहिए। यदि उन्हें इन बातों का ज्ञान रहता है तो समवयस्कों की बुरी सगति में नहीं फँसते ह। स्वभावत इस अवस्था में इन बातों को जानने की अधिक उत्सुकता होती है। गृह पर जब इसकी जानकारी नहीं होती है तो बालक दूसरी

सगति में सम्मिलित हो जाता है जहाँ उसे इसका ज्ञान हो सकता है। किन्तु ऐसी सगति में बच्चे के बुरे होने के बहुत अवसर होते हैं। माता पिता द्वारा प्रसन्नमुद्रा में प्राप्त ज्ञान बच्चे को सुमार्ग का प्रदर्शन करता है।

ज्ञान की अभिवृद्धि मन्द गति से होनी चाहिए और उसमें माता-पिता का बहुत बडा हाथ ह। ज्ञान की बातो को बताते समय हमें मधुर और कोमल बनना चाहिए।

मधुर होने पर हमें गम्भीर होना चाहिए। यद्यपि यह उपदेश लज्जाशील ह फिर भी हमें उसे बताने में सकोच नही करना चाहिए। जब हम बच्चे को शिशु-उत्पादन के विषय में कुछ बताते रहेंगे तो पाठशाला में यही पाठ पढते समय उसे आनन्द आयेगा और वह अच्छी तरह उसे समझ भी सकेगा। जो बालक इस विषय में बिल्कुल ही अनभिज्ञ रहेगा उस पाठशाला का यह पाठ समझ में नहीं आ सकता। अत उन्हें इसका पूर्व ज्ञान अत्यावश्यक ह। यदि विषय की कुछ शिष्ट पुस्तकें भी मिल सकें तो उन्हें देना चाहिए। विवाह और शिशु-जनन में लिंग ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती ह। ऐसा होने पर वे विवाह के सम्बन्ध में अधिक सावधान दीखेंगे। इसके लिए तो माता-पिता का ही आदर्श बहुधा उनके समक्ष होता है फिर भी इससे उनके ज्ञान का भी सम्बन्ध होता है।

यौवन की कठिनाइयाँ—बच्चो और नवयुवको में अन्तर केवल उनमें अकस्मात् आत्म-विवेक का उद्बोधन मात्र ही ह। बच्चे अपने विषय में चिन्तन नहीं करते। वे बाह्य-वस्तुओं को देखने और उनके विषय में सोचने में ही निमग्न रहते ह। 'वे क्या करते हैं, उसी ओर उनकी रुचि होती ह और उसमें उन्हे प्रसन्नता भी होती ह। 'वे क्या हैं, यह विचार उनके मस्तिष्क में नही आता है, यद्यपि उन्हे अपनी वीरता और कार्यो का अभिमान होता ह। उसके कपडे कैसे ह उसका बाल गन्दा ह अथवा उसके बदन में धूल लगी है आदि भावनाएँ बच्चे में नही आती। बच्चे यह नही सोचते कि लोग उन्हें देखकर क्या कहेगे। यदि कोई कुछ कह भी देता है तो उसकी बातो पर वे ध्यान नही देते। किन्तु एक युवक में इन सभी बातो का अभाव-सा रहता ह। उसमें अपने प्रति विचार अधिक होता ह। वह अपने कार्यों और अपनी भावनाओ को सूक्ष्मतम

दृष्टि से देखता है तथा उनके गुण-दोष का ख्याल रखता है। यह परिवर्तन उसमें शारीरिक परिवर्द्धन के साथ-साथ होता है। बालिकाओं का तो शरीर ही यौवन में बिल्कुल बदल जाता है। वे मोटी हो जाती हैं और चिढ़न तथा सयम की प्रवृति उनमें बढ जाती है। बालका की मुख-ध्वनि यौवन के पदार्पण के साथ ही बदल जाती है। शैशव में उनकी वाणी मधुर और मीठी होती है परन्तु धीरे धीरे यह वाणी भद्दी और मोटी हो जाती है। पहले तो उन्हें अपनी ही ध्वनि पर विश्वास नहीं होता परन्तु जब यह ज्ञात हो जाता है कि उनकी वाणी, उनके मुँह की अभिवृद्धि के साथ ही चलती है। जितना ही मुँह बढ़ेगा, वाणी उतनी ही मोटी होती जायेगी और तब कहीं विश्वास करते हैं। बहुत से बच्चे जो प्रारम्भ में बहुत पतले होते हैं, यौवन में इतने मोटे हो जाते हैं कि उनको पहचानना कठिन हो जाता है । कुछ बच्चों का परिवर्द्धन असीमित होता है महान् लगता है। प्राय ये परिवर्तन हमें घबरा से देते हैं। उदाहरणार्थ यदि हम अपने बचपन के साथी को पतला-दुबला देख रहते हैं और यौवन में जब उसे मोटे रूप में देखते हैं तो आश्चर्यान्वित से हो जाते हैं। परिवार में जब बचपन का दुबला बच्चा यौवन में बदल कर मोटा हो जाता है तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं और उसे बराबर छेड़ा करते हैं। परन्तु ऐसा करना विवकी (sensitive) युवक के लिए हानिप्रद होता है।

यदि हम ऐसी बातों को रोकना चाहें तो हमें आलोचनात्मक दृष्टिकोण से कार्य करना चाहिए। उन्हें हम प्रयोगात्मक ढंग से राय दे सकते हैं। जैसे यदि दुर्बल बच्चे को वस्त्र आदि पहनने के पश्चात् कहें 'तुम कैसे सुन्दर लगते हो' तो वह बहुत प्रसन्न होगा। इस बात का भी प्रयत्न करना चाहिए कि उसे अपनी संगति में दुबलाहट के कारण अपमानित न किया जाय। मोटे बच्चों को खेल की ओर अधिक [illegible] चाहिए और खेलने की अवस्था में [illegible] प्रोत्साहन [illegible] चाहिए। हमें युवकों को [illegible] हास्यास्पद बन[illegible] [illegible]ना होना चाहिए। यद्यपि [illegible] है [illegible] क्योंकि [illegible]

भाइयों के मस्तिष्क में [illegible]

मेरी बातो पर ध्यान नही दिया जाता है परन्तु अमुक की बातों को मान लिया जाता है। ऐसे स्थल पर अस्वाभाविकता की शरण न लेकर सावधानी से व्यवहार करना चाहिए।

उन्हें एकान्त में छोड देना चाहिए—माता पिता को युवक बालक और युवती बालिका को एकान्त में रखना ही श्रेयस्कर होता है। कारण कि इसी अवस्था में क्रोध और शिक्षक आदि के उद्बोधन का समय रहता है। कुछ माता-पिता अपने बच्चे को अलग होने देना नही चाहते है और ऐसा करके वे सदय उनके व्यवहार, ढग आदि की आलोचना किया करते है। इसका प्रभाव उन पर उचित नहीं पडता। बार-बार की प्रताडना अवाछनीय है। इसे वे सहन करने को तत्पर नही रहते। कुछ लोग कुत्तो की भाँति उनकी तुच्छातितुच्छ त्रुटि पर अप्रसन्नता प्रदर्शित कर झिडक बैठते है और क्रोध में अनाप-सनाप कह देते है। यदि वे पर्याप्त रूप से प्रबुद्ध है तो वे इसकी प्रतिक्रिया भी कर सकते है। माता-पिता को इससे सावधान रहना चाहिए। हम उन्हें शान्त रखने का विशेष उपक्रम करना चाहिए और अपनी बातो में उनकी उपेक्षा न करके सम्मिलित करना चाहिए। यदि वे अपनी स्वेच्छा से पृथक रहना चाहते है तो उनकी इच्छा में व्यवधान प्रस्तुत करना भी उचित नही होता है। यदि वे एकान्तप्रिय हैं तो उनके लिए रहने के लिए एक पृथक कमरे की व्यवस्था कर देनी चाहिए जहाँ अकेले वे पढ सकें, लिख सकें और सो सकें। उनके कमरे में बिना उनकी इच्छा के किसी को जाना भी नही चाहिए। ऐसा होने से उसका यौवन सुखमय होगा और अपनी भावनाओ को वह स्वय ही उस दिशा में अभिप्रेत करेगा जिसमें उसका कल्याण निहित होगा। इससे उसकी चिन्तन-शक्ति बढगी और उसके स्वाभाविक गुणो को प्रोत्साहन मिलेगा।

कमरे की स्थिति—नवयुवक अथवा नवयुवती के हेतु जिस कमरे का नियोजन किया जाता है उस पर कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। वह कमरा परिवार का बैठक नही होना चाहिए जहाँ लोगो का जमघट-सा लगा रहे अथवा बराबर आगन्तुक आया करें, कभी-कभी विशेष तौरपर गर्मियों में बिल्कुल एकान्त रहना भी अच्छा-सा नही जँचता।

जी में विरक्ति का अनुभव होने लगता ह और वसी स्थिति में अकेले रहना बुरा-सा लगने लगता है। इस स्थिति में कमरे को बठक बनाया जा सकता ह। किन्तु यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि सोने वाला एक बिस्तरा अलग कर लिया जाय। यदि कमरे का अभाव है और इसके लिए विवशता है तो पर्दे द्वारा भी काम निकाला जा सकता है। कमरे के अन्य सामान को पर्दे के भीतर कर बाहर बैठक का काम निकाला जा सकता है।

अध्याय १७

किशोरावस्था का प्रथम सोपान और समसामयिक समस्याएँ

ज्यो ही बच्चा अपना पर्याप्त शारीरिक विकास कर लेता ह और मस्तिष्क के साथ उस विकास का पूण सम्बध स्थापित कर लेता है त्यो ही माता पिता की स्थिति में एक कम्पन-सी आती ह। बालक का विकास माता पिता के अस्तित्व के लिए एक अप्रच्छन्न चुनौती बन जाता ह इसका एक प्रमुख कारण है। बालक अपने अधिकारो की ओर बढता हैं और अभिभावकों को तो पहले से ही इसकी धुन लगी रहती है। बस इसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर बालक तया माता-पिता में प्रतिस्पर्धा का सूत्रपात होता हैं। माता पिता सोचते है कि उनका बच्चा अक्षरश उनके द्वारा निर्धारित मार्ग पर चले और बालक सोचता है कि वह भी परिवार में अपना कुछ महत्वपूण स्थान रखता ह, अपने लाभ-हानि को समझन की क्षमता भी उसमें ह, अत वह स्वय अपने माग का निर्धारण कर सकता है। ऐसी स्थिति में बडी विकट समस्या उत्पन्न हो जाती ह। कुछ माता पिता तो बालक के ऐसे विचारों को कुचलने के लिए एडी-चोटी का जोर लगा देते हैं और इसका कुफल होता है बालक का प्रतिक्रियावादी होना।

ऐसी स्थिति को उत्पन्न न होने देना ही श्रेयस्कर है। यदि कोई ऐसा अवसर उपस्थित हो जाय जिसमें माता-पिता की आस्था को बालक चुनौती दे तो माता-पिता को चाहिए कि चतुरता पूर्वक टाल जायें। ऐसे अवसर पर तक करना और बच्चे को यह चेतावनी देना कि 'हम तुम्हारे पिता हैं' सवथा अहितकर है। परिस्थिति को चतुरतापूर्वक सँभाल लेना ही हमारा एक मात्र लक्ष्य होना चाहिए।

उक्त अवस्था में (किशोरावस्था में) अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब माता-पिता और किशोर में द्वन्द्व की आशका रहती है। बालक

अपन को अपना पथ निर्देशक समझता और माता पिता स्वय को बालक का पथ प्रदर्शक मानते हैं। किन्तु दोनों में समन्वय नीति को अपनाते हुए भी कुछ विषय ऐसे है जिनमें माता पिता को बालक का पथ प्रदर्शन अथवा उनका मार्ग-निर्देशन आवश्यक है। उदाहरणार्थ बालक के स्वास्थ्य के लिए हमें चाहिए कि उन्हे ठीक समय पर सोने और जागने के आदी बनावें, उनके मनोरंजन, खेलकूद आदि के समय निश्चित कर दें बालक के जेब खर्च को उचित मात्रा में सीमित कर दें जिससे वे अनुचित ढंग से पैसा खर्च करने के आदी न हो जायें, उनके बाहर जाने के समय पर भी उचित प्रबन्ध लगावें और ध्यान दें कि वे रात्रि में अधिक देर तक बाहर न रहें।

हम उपरोक्त प्रबन्ध लगाते हुए भी बालक को उचित ढंग से समझा कर उसे आश्वासित कर सकते हैं कि ये प्रतिबंध, प्रतिबन्ध न होकर हित के साधन हैं।

इस समय दो ऐसी समस्याएँ है जिन्हें लेकर माता पिता बहुत परेशान रहते हैं। पहली है बच्चों का सिनेमा देखना और दूसरी उनका वेश-भूषा। नीचे इन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायेगा।

सिनेमा—वर्तमान युग में नगर में निवास करने वाला शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा जो सिनेमा न देखता हो। चारों ओर संगीत का साम्राज्य छाया हुआ है। शादी-ब्याह जलसा या किसी भी प्रकार के उत्सव का श्रीगणेश बहुधा सिनेमा रेकार्डिंग से होता है। घर में भी लोग सिनेमा के गीत गुनगुनाया करते हैं। इन सबका प्रभाव बच्चों के मस्तिष्क पर न पड़े, यह असम्भव है। जब सिनेमा का प्रचार (adverts ment) करते हुए रिक्शे या तांगे पर बैठ इश्तहार बाँटने वाले सिनेमा-संगीतों की रिकार्डिंग करते हुए सड़कों और गलियों में चलते हैं तो बच्चों की भीड़ टूट पड़ती है। वास्तव में हमारा सारा वातावरण ही विषाक्त है। रेडियो से प्रोग्राम करने वालों को भी सिनेमा-संगीत ही प्रिय लगते हैं और विवश होकर रेडियो को भी जनता के मनबहलाव को ध्यान में रखते हुए बालकों के हित अहित की कोई चिन्ता न करते

हुए सिनेमा-संगीतों को ही धूम से प्रसारित करना पड़ता है । इन्हीं सब व्यवस्थाओं का यह प्रतिफल है कि आज हमारे देश का प्रत्येक किशोर अशोक कुमार और प्रत्येक किशोरी मधुबाला या न जाने क्या-क्या बनने की इच्छा रखती है, प्रयत्न करती है । ऐसी अवस्था में माता-पिता के सम्मुख यह जटिल प्रश्न उठता है कि बच्चों को सिनेमा दिखाया जाय अथवा नहीं। बच्चों को सिनेमा दिखलाने के पहले हमें यह विचार कर लेना है कि भारतीय फिल्म-उत्पादक क्या प्रस्तुत करते हैं । इसका उत्तर स्पष्ट है। उनका एकमात्र उद्देश्य होता है अर्थ प्राप्ति और यह तभी सम्भव है जब वे हमें हमारी वासनात्मक छिछली प्रवृत्तियों को जगाने में समर्थ होते हैं। खेल ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक चाहे जैसा भी हो उसमें ऐसी दृश्य-योजना आवश्यक है जिससे मनचलों की तृपित पिपासा शान्त हो सके। तब भला क्या ऐसे खेल बच्चों के लिए हितकर हैं ? क्या हम उन्हें ऐसे दृश्य दिखावें जिनसे हमारी पिपासा शान्त होती है ? निश्चय ही कोई भी समझदार आदमी हाँ नहीं कह सकता । पर किया क्या जाय ? बच्चे मानते कब हैं। यदि आप यह कहते हैं कि उन्हें सिनेमा नहीं देखना चाहिए तो वे छिप कर देखेंगे और साथ ही उनको यह सोचने का अवसर देते हैं कि 'तब आप क्यों देखते हैं' । स्थिति बड़ी नाजुक होती है । मैंने ऐसे माता-पिता भी देखे हैं जो कब और कैसे सिनेमा जाते हैं यह उनके बच्चों को मालूम तक नहीं होता। उनके बच्चे कभी भी उनसे यह आग्रह नहीं करते कि उन्हें सिनेमा दिखाया जाय। किन्तु इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि बच्चों को अन्धकार में डालकर सिनेमा देखा जाय। हाँ, हमें संयम अवश्य बरतना चाहिए और दिन रात सिनेमा की बातें करके बच्चों के मस्तिष्क में उनके प्रति जिज्ञासा नहीं उत्पन्न करना चाहिए। अब रहा प्रश्न उनको सिनेमा दिखाने का, इस सम्बन्ध में प्रत्येक माता-पिता एक मत होने को तैयार है कि बच्चों को हर प्रकार के खेल नहीं दिखाये जा सकते। किन्तु बच्चों के लिए अलग से खेल भी तो नहीं बन सकते। वर्ष में शायद ही एक आध ऐसे खेल आते होंगे जो बच्चों के लिए किसी सीमा तक उपयुक्त हों। हमारे देश में केन्द्रीय सरकार कुछ शिक्षाप्रद चित्रों का निर्माण करती और

कराती है। इन चित्रों से बच्चों का मनबहलाव भी हो सकता और साथ ही उनकी ज्ञान-वृद्धि भी हो सकती है। यदि ऐसे चित्रों का प्रदर्शन नियमित रूप से व्यावसायिक सिनेमा-हालों में होता तो हमारी यह समस्या सरलतापूर्वक सुलझ जाती। सूचना विभाग द्वारा प्रचारित चित्रों की भी अपनी उपयोगिता होगी। पर इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है

जब तक उपरोक्त व्यवस्थाएँ नहीं हो पातीं तब तक के लिए हम केवल यही कर सकते हैं कि हम अधिक से अधिक धार्मिक अथवा ऐतिहासिक खेलों में ही बच्चों को ले जायें। बच्चों को अकेले सिनेमा देखने जाने देना तो सर्वथा अहितकर है।

जेब खर्च—बहुधा बच्चों के जेब-खर्च की जिम्मेदारी माताओं पर रहती है जो बच्चों से अपनी जान बचाने के लिए उन्हें उनकी जिद्द के अनुसार कम या अधिक पैसा दे दिया करती हैं। इसके लिए कोई विशेष नियम नहीं है। जब इच्छा हुई कम और यदि बालक अधिक तंग कर रहा है तो कुछ अधिक पैसा दे देती हैं। किन्तु कुछ परिवार ऐसे भी हैं जहाँ बच्चे को महीने में शायद ही एक-दो बार दो चार पैसे मिल जाते हों। वास्तव में हमारी आर्थिक दशा इतनी शोचनीय है कि हम अपने बच्चों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। किन्तु कुछ सम्पन्न परिवार के बच्चे भी स्कूल में उन निर्धन बच्चों के साथ पढ़ते हैं। निर्धन बच्चे को अपनी निर्धनता का बोध होता है, अपनी विवशता के प्रति वह विद्रोह करता है जिसका सामना उसके माता-पिता को करना पड़ता है। वह उन्हीं से टकरा जाता है। इसमें किसी प्रकार का सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो सकता। गरीब माँ-बाप अपने बच्चे को खूब पैसा नहीं दे सकते हैं और धनी माँ-बाप कम पैसा देने में अपना अपमान समझते हैं। बच्चे को जेब-खर्च देने का वास्तविक उद्देश्य न समझना ही इस प्रकार की विषमता का कारण है। हम बच्चे को पैसा इसलिए देते हैं कि वह व्यय करने का उचित ढंग सीख जाय। अतः केवल पैसा देकर ही उत्तरदायित्व समाप्त नहीं हो जाता है। हमें चाहिए कि हम बच्चों को इस बात की भी शिक्षा दें कि अपने पैसे का उचित उपयोग करें। जब इस उद्देश्य

मे जेब खच दिया जाने लगेगा तो किसी प्रकार की विषमता का प्रश्न ही नही रह जायगा। कम या अधिक पसे से समान अनुभव प्राप्त कराया जा सकता ह। बच्चा भी यह जान जायगा कि उसे जितना पैसा मिलता ह उतने म ही उसे अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदनी ह। बच्चा अपने पसे का सदुपयोग करता ह या नही इसका हमें सदव ध्यान रखना चाहिए।

बच्चा को अपनी आर्थिक स्थित से परिचित करा देना भी आवश्यक ह। इससे स्थिति स्पष्ट हो जाती ह। पर साथ ही उह इस बात का भी आश्वासन दे देना चाहिए कि हम उनकी समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भरसक प्रयत्न करते है और भविष्य में करते रहेंगे।

स्वतन्त्रता—किशोरावस्था में हम बालक को कितनी स्वतन्त्रता द यह भी एक समस्या है। हम उन्हे पूण स्वतन्त्र नही छोड सकते क्योकि स्वच्छन्दता उन्हें कभी-कभी अनुचित माग का भी प्रदर्शन कर सकती ह। यद्यपि बच्चे बाहर किसी के साथ जाना चाहते है पर उन्हें अकेले भी जाने की शिक्षा देनी चाहिए। अकेले जाने में कई बातो का भय रहता ह। यदि अकेले जाने के लिए विवशता हो तो उन्हें जाने देना चाहिए परन्तु उन्ह समय पर लौट आने की आगाही अवश्य द देनी चाहिए। एसा न हो कि उनका भोजन अथवा जलपान का समय उचित रूप में न बीत पावे। अकेले जान पर उनके पास कुछ पैसा और अपने पिता का पता अवश्य ही होना चाहिए। इनके रहन पर वे भूल जान पर भी वापस लौट सकेंगे। अच्छा तो होता, उसे अकेला न भेजकर उसके किसी समवयस्क के साथ भेजा जाव। समवयस्क उसकी अधिक सहायता कर सकता ह। बच्चा के भूलने आदि के अवसर देहातो की अपेक्षा नगरो में अधिक होते ह। अपरिचित लोगा से बच्चा का मिलना वार्तालाप करना, मिष्टान्न खाना आदि व्यापार कदापि नही होना चाहिए। ऐसा होन म बच्चा का झुकाव दूसरी ओर हो जाता है। विशेषकर बालिकाओ के लिए यह व्यवहार हानिकारक होता है। हमें वहाँ बडी सावधानी से पश आना चाहिए। बच्चा पर इस सम्बन्ध विच्छेद का सीधा भान नही होने देना चाहिए और काय भी हल हो जाना चाहिए। अवकाश के दिन

उन्हें कुछ स्वतन्त्रता अपेक्षाकृत और दिनो के अधिक देनी चाहिए परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि कहीं इसका सीमोल्लघन न हो जाय। प्रत्येक प्रकार की स्वच्छन्दता में कुछ न कुछ कुपथ अपनाने का अवसर तो है ही परन्तु इससे बचने के लिए बच्चे की स्वतन्त्रता छीन लेना और भी घातक है। कारण कि स्वतन्त्रता प्राप्ति का अवसर तो उनके जीवन में आयेगा ही और जब आयेगा तभी उनके लिए एक भय-सा रहेगा। अतः उनका पथप्रदर्शन सोच-समझ कर सावधानी से होना चाहिए। कुछ माता पिता बच्चा की इस प्रवृति से भयभीत होकर उन्हें इन सम्पूर्ण कार्यों से रोक देते है। सायकिल चलाना, पेड पर चढ़ना नाव खेना, तैरना, घोडे की सवारी उनके लिए विवर्जित हो जाती है। इससे वे अपने जीवन में इन कार्यों को सीख नही सकते हैं। उन्हें हम ऐसा करके प्रगति करने तथा स्वच्छन्दता का अनुभव करने से रोक देते है। प्रायः देखा जाता है कि ऐसे बच्चे जीवन में सफल नहीं हो पाते। हम उन्हें किसी प्रकार इन खतरों से बचा नहीं सकते। यदि उन पर अधिक अंकुश रखा जाय तो घर की सामग्रियों को ही व तोड़ना प्रारम्भ कर दें। उनकी स्वतन्त्रता में उन्हें एक जिम्मेदार व्यक्ति समझना चाहिए और उन्हें अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत करते रहना चाहिए।

अध्याय १८

किशोरावस्था का द्वितीय सोपान

किशोरावस्था के द्वितीय सोपान में बालक पहले की अपेक्षा और अधिक विकसित हो चुका रहता है। वह अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र रहना चाहता है और हम उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाना चाहते हैं जिससे वह बिगड़ने न पाये। हमारी यही भावना द्वन्द्व उत्पन्न करा देती है। चौदह वर्ष की आयु से लेकर सोलह वर्ष की आयु तक का काल इतना महत्वपूर्ण होता है कि यदि हम ऐसे महत्वपूर्ण काल की उपेक्षा कर गए तो भविष्य में पछताना ही पड़ेगा। हम बच्चे पर कठोर से कठोर नियन्त्रण रखकर उनका हित नहीं कर सकते हैं। विकास के लिए कुछ सीमा तक स्वच्छन्दता आवश्यक है। नियमित स्वच्छन्दता में ही स्वाभाविक विकास सम्भव है।

किशोरावस्था में बच्चा अपने को कुछ समझने लगता है। समझने दीजिए और इतना अधिक समझने दीजिए कि वह स्वयं को परिवार, कुल, ग्राम, नगर और समाज तक का एक महत्वपूर्ण अंग समझे। उसके इस अहम्भाव को उचितमार्ग की ओर मोड़िए। बालक महत्वशाली हो जायगा। कुछ स्कूलों में 'प्रिफेक्ट' निर्वाचन की प्रथा प्रचलित है। यदि हम 'प्रिफेक्ट' और शेष विद्यार्थियों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करें (अथवा जहाँ प्रिफेक्ट नहीं है वहाँ मानीटर को ले लें) तो ज्ञात होगा कि प्रिफेक्ट अथवा मॉनीटर को थोड़ा सा महत्व प्रदान करके हम उसके विद्यार्थी जीवन में कितना महान् परिवर्तन ला सकते हैं। प्रिफेक्ट उन सिद्धान्तों की शिक्षा सामान्य विद्यार्थियों को देता है जिन्हें पाठशाला का शिष्टाचार कह सकते हैं। दूसरों को खुले आम उपदेश देने वाला अथवा दूसरों के चरित्र सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करने

वाला प्रकाश रूप में निश्चय ही कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता है जिसके लिए लोग उस पर उँगली उठायें और इस प्रकार अवांछित कार्यों से काफी बचा रहता है। धीरे-धीरे उसकी यही आदत बन जाती है और उसे अवांछित कार्यों से अरुचि-सी हो जाती है। जब हम यह देखते हैं कि स्कूल अथवा कक्षा में किसी एक विद्यार्थी को थोड़ा महत्व प्रदान करके हम उसके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकते हैं तो भला घरेलू अर्थात सामाजिक जीवन में बालक को महत्व प्रदान करके हम कितना महत्व-पूर्ण परिवर्तन ला सकते हैं।

कुछ लोग बच्चों को चारों ओर से घेर रहते हैं। उन्हें कभी भी कहीं अकेले नहीं जाने देते। पूर्ण सुरक्षा में ध्यान से तो वे कुछ सीमा तक ठीक करते हैं किन्तु साथ ही वे बालक के कुछ ऐसे मनोभावों का हनन करते हैं जिनसे उनमें स्वावलम्बन, आत्मरक्षा, परोपकार आदि गुणों का समावेश हो सकता था। वर्तमान शिक्षण प्रणाली में विद्यार्थियों को अधिक से अधिक नियमित स्वतन्त्रता देने का ध्यान रखा जाता है। बालक अपना महत्व समझता है विद्यालय के कर्मचारी भी उसके महत्व को स्वीकार करते हैं। यहीं दोनों की शक्तियों का समन्वय होता है और बालक को स्वतन्त्र स्वाभाविक विकास का अवसर मिलता है। स्काउटिंग द्वारा विद्यार्थियों में साहस, उत्साह स्वावलम्बन आदि जिस प्रकार संचित किए गये हैं उतना किसी अन्य माध्यम द्वारा नहीं हो सका। कारण यह है कि स्काउटिंग में बच्चों को कभी-कभी परिभ्रमण का अवसर देकर उन्हें अपने हाथों अपना काम करने की शिक्षा दी जाती है। कभी-कभी उन्हें अपने हाथों सामान खरीदना, मार्ग ढूँढ़ना, निवास स्थान बनाना भी पड़ता है जिससे उन्हें स्वावलम्बन की शिक्षा मिलती है। कभी-कभी भिन्न मण्डली के साथ वे बाहर निकल जाते हैं और विघ्नबाधाओं को झेलते हुए अपना काम करते हैं। उन्हें इसमें आनन्द आता है। कुछ माता-पिता ये नहीं चाहते कि उनके बालक इस प्रकार बाहर जायें। किन्तु वे यह नहीं समझते कि इससे बच्चे का अहित ही होगा। स्वावलम्बन तो उनमें आ ही नहीं सकता और बिना स्वावलम्बन के कौन उन्नति कर सका है।

भविष्य निर्धारण—बड़े होकर बच्चे क्या करें यह हम अपने मस्ति-

कोण से देखते हैं। अपनी रुचि के अनुसार ही हम उनका भविष्य निर्धारण करते हैं। कैसी विडम्बना है? पूर्णतया रुचि के अधीन रहने वाली वस्तु का निर्धारण साधक द्वारा न होकर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कराया जाता है। कुछ बालक तो विद्यार्थी जीवन में ही इसका विरोध करते हुए देखे जाते हैं। उनकी रुचि है कला सम्बन्धी विषयों में और पिता या अभिभावक उन्हें खींचते हैं विज्ञान की शुष्कता की ओर। विद्यार्थी जीवन में तो जैसे-तैसे रो-गाकर बालक इस विषमता को ढो ले जाता है किन्तु जहाँ जीविका का प्रश्न उठता है वहाँ हम अपनी इच्छा को ऊपर लादकर उनका भविष्य अंधकारमय ही बना सकते हैं। अतः उन बच्चों को जिनकी रुचि प्रारम्भ से ही जिस विषय की ओर रहती है आगे चलकर उसी व्यवसाय में लगाना सदैव लाभकर सिद्ध होता है। विषय की विविधता देखते हुए हमें यह कहना पड़ता है कि हमें अपने बालकों के लिए चुनना कुछ सरल कार्य नहीं है।

कुछ लड़के-लड़कियाँ अपना व्यवसाय स्वयं चुन लेती हैं और कुछ को बताना पड़ता है। जो बालक-बालिका अपना व्यवसाय स्वयं चुन लेने की क्षमता रखती हैं उनमें आत्म-निर्णय की शक्ति अधिक रहती है। जिनको हमें स्वयं बताना पड़ता है उनके सम्बन्ध में हमें एक बात निश्चय रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि व्यवसाय उनकी रुचि के अनुकूल हो।

अच्छी पुस्तकें अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं

और

हम आपको आपके व्यक्तित्व के निर्माण कार्य में यथाशक्ति सहायता प्रदान करने के लिए उत्सुक हैं। यदि आपका नाम अन्य हजारों ग्राहकों की भाँति हमारी इस सूची पर लिखा हुआ नहीं है जिन्हें हम बराबर अपने नये प्रकाशनों की सूचना देते रहते हैं तो आज ही एक कार्ड अपने नाम पते सहित हमारे पास लिख भेजें। एक बार आपका कार्ड मिल जाने पर हम आपको नियमित रूप से विविध प्रकार के मनोरंजक साहित्य के—जिनमें उपन्यास, (जासूसी और सामाजिक) कहानी संग्रह तथा अन्य साहित्य आदि भी सम्मिलित हैं—नये प्रकाशनों की खबरें भेजते रहेंगे। अपने यहाँ के किसी भी पुस्तक विक्रेता से हमारी पुस्तकें माँगें। अगर कोई दिक्कत हो तो सीधे हमें लिखें।

एक और परामर्श

(१) आप आजकल के बढ़े हुए डाकखर्च से परिचित ही होंगे। स्थिति यह है कि एक रुपये की पुस्तक डाक द्वारा मँगाने पर लगभग एक रुपया ही व्यय पड़ जाता है। इसलिए अपने यहाँ के पुस्तक विक्रेता से अनुरोध कीजिए कि वह आपकी रुचि की पुस्तकें हमसे मँगाये। हम पुस्तक विक्रेता को भी सुविधाएँ देंगे और आपकी भी बचत में सहायक होंगे

(२) यदि कोई पुस्तक विक्रेता आपके अनुरोध पर विचार न करे तो आप उसका नाम पता हमें लिख भेजिये। आपकी सुविधा के लिए हम उनसे आग्रह करेंगे कि वे आप द्वारा माँगी गयी पुस्तकें अपने यहाँ रखें।

किताब महल ❀ प्रकाशक इलाहाबाद